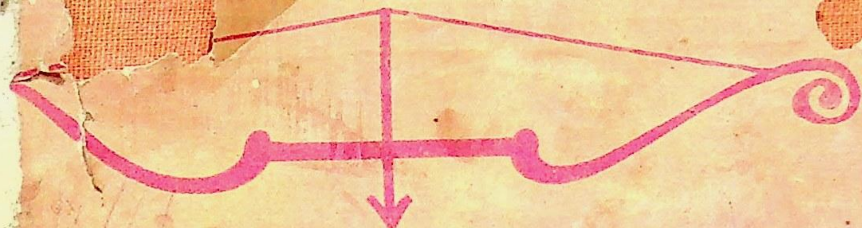
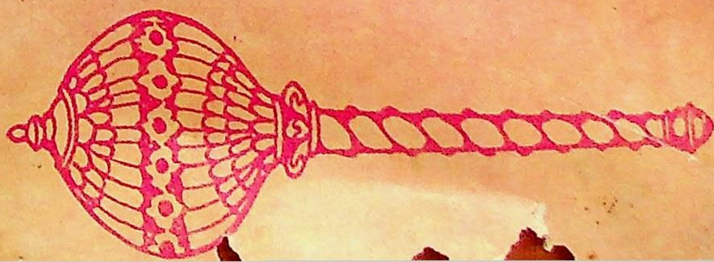




श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये



804

श्रीसद्गुरुं शरणं प्रपद्ये

संपादक

शिवदयाल

मण्डेलिया परमार्थ कोष

श्री रामनवमी, २ अप्रैल १९८२

प्रकाशक

मण्डेलिया परमार्थ कोष
विरलानगर, ग्वालियर

मुख्य विक्रेता

१. सस्ता साहित्य मण्डल,
कनाट सर्कस, नई दिल्ली

२. भारतीय विद्या भवन
चौपाटी, बम्बई

मूल्य : १० रुपये

मुद्रक

भारती प्रिण्टर्स
दिल्ली-३२

प्रस्तावना

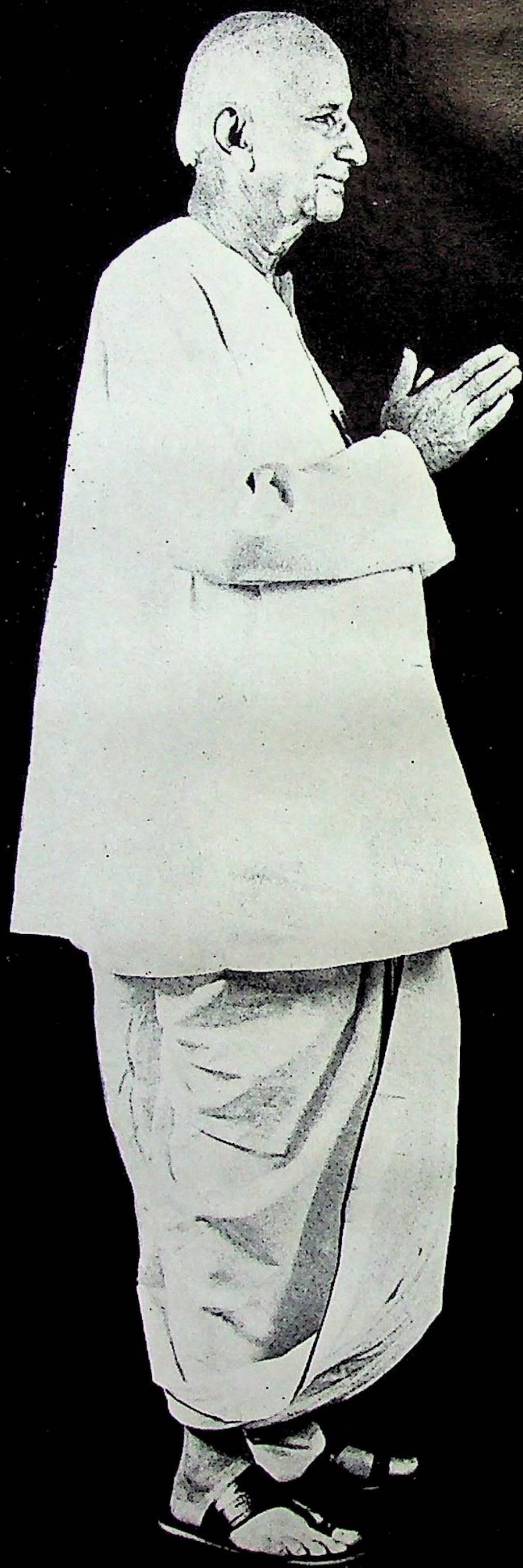
'श्रीरामायनमः' के बाद मण्डेलिया परमार्थ कोष ने 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय', 'बन्दउँ सीताराम पद', 'ॐ नमः शिवाय', 'नारायणी नमोऽस्तुते', 'साधना पथ' (चौथा संस्करण) और अंग्रेजी में श्रीमद्भागवत (संक्षिप्त) प्रकाशित किये।

यह माला 'श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये' के बिना अपूर्ण थी। एक दिन बंगलूर में अनायास मैंने जस्टिस शिवदयालजी से कहा, "हनुमानजी पर एक पुस्तक आप लिखिये।" उन्होंने गद्‌गद होकर कहा, "कुछ वर्ष पूर्व मुझे इसके लिए श्रीराम प्रेरणा हो चुकी है। अब मैं प्रयास करूँगा।"

मुझे बहुत प्रसन्नता हुई जब उन्होंने १७ दिसम्बर १९८१ को बंगलूर में ही इसकी पाण्डुलिपि मुझे दी।

आज हमारे देश में युवक-युवतियाँ देश-सेवा, जन-हित एवं व्यक्तिगत उत्थान के लिए जागरूक हैं जिसके लिए श्रीहनुमानचरित आदर्श है। इस पुस्तक के माध्यम से उस उद्देश्य की पूर्ति हो, यह मेरी मंगल कामना है।

दुर्गाप्रसाद मण्डेलिया



जिनकी जीवन-साधना में

'मैं सेवक, सचराचर रूप स्वामी भगवन्त'

की सतत अभिव्यक्ति है

उन

यथार्थ कर्मयोगी भक्त

श्री घयश्यामदास बिड़ला

को

श्री रामनवमी (२ अप्रैल १९८२) उनकी ८९वीं वर्षगाँठ

के मंगलमय अवसर पर

परम श्रद्धा सहित

श्रीराम जय राम जय जय राम

भूमिका

हनुमान सम नहिं बड़भागी।
नहिं कोउ रामचरन अनुरागी॥

श्रीराम-जानकी के मन्दिरों से कहीं अधिक संख्या में श्री हनुमानजी के मन्दिर भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी देखे जाते हैं। श्री बद्रीनाथ से रामेश्वर तक और जगन्नाथपुरी से द्वारिका तक लाखों नर-नारी इन मन्दिरों में दर्शनार्थ और प्रसाद चढ़ाने जाते हैं। अन्य लाखों अपने-अपने घर में ही रहकर मारुति, महावीर, संकटमोचन हनुमानजी की आराधना करते हैं। (१) जिन पर कोई संकट आ गया है, रोग या क्लेश ने घेर लिया है, वे संकटनिवारण के लिए हनुमानजी को पुकारते हैं। (२) जिनके कार्य सिद्धि में कठिनाई आ रही है, जो अपने पुरुषार्थ में थक रहे हैं, वे सहायता के लिए, बल के लिए, हनुमानजी से प्रार्थना करते हैं। आर्तजन के दुःख हनुमानजी दूर कर देते हैं, ऐसी लोगों की श्रद्धा है, अनुभव भी है। अर्थार्थियों की हनुमानजी सहायता कर देते हैं, बल-बुद्धि प्रदान कर देते हैं, यह भी लोक-श्रद्धा है, बहुतों की अनुभूति है! उन्हें तो श्रीराम ने इस मंत्र से दीक्षित किया हुआ है—"मैं सेवक, सचराचर रूप स्वामि भगवन्त"। इसलिए जो भी उन्हें पुकारते हैं, जो भी उनसे प्रार्थना करते हैं, उन सबकी वह सुनते हैं और उनको अपने स्वामी श्रीरामचन्द्र भगवान का रूप जानते हुए

वास्तव में वह श्रीरामचन्द्र की सेवा करते हैं। (३) हजारों भक्त ऐसे हैं जो हनुमानजी की उपासना इस श्रद्धा से करते हैं कि वह हमारे इष्टदेव श्रीराम के निकटतम हैं, उनके सर्वाधिक विश्वासपात्र हैं; उनके परमश्रेष्ठ दूत हैं। उनकी कृपादृष्टि होने से हमें श्रीराम का दर्शन होगा, श्रीरामकृपा हमारे ऊपर वरदहस्त बनकर सर्वत्र-सर्वदा बनी रहेगी। (४) सैकड़ों जिज्ञासु ऐसे हैं जो हनुमानजी के चरित का अध्ययन, मनन, वर्णन इस ध्येय से करते हैं कि श्रीहनुमान-चरित आदर्श है और उसमें प्रतिपादित सद्गुणों को हम अपने आन्तरिक और व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ करने का श्रद्धायुक्त प्रयास करें। **श्रीहनुमान-चरित श्रेष्ठतम मानव-मूल्यों की परिभाषा है।**

बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगता।
सुदार्ढ्यं वाक्स्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणाद् भवेत्॥

श्रीहनुमानजी की आराधना से बुद्धि, बल, कीर्ति, धीरता, निर्भीकता, आरोग्य, सुदृढ़ता, वाणीकुशलता आदि का प्रसाद मिलता है।

२

महाराष्ट्र के व्यायाम-मन्दिर में हनुमानजी की मूर्ति की स्थापना **राष्ट्रपिता महात्मा गांधी** से कराई गयी। पूज्य बापू की अभिलाषा रहती थी कि **देश की नयी पीढ़ी स्वस्थ, सबल, संयमी, चरित्रवान और संस्कारवान बने और आगे चलकर देश को ऊँचा उठाये।** मारुति-विग्रह की स्थापना के उपरान्त उन्होंने कहा—

"बच्चो! तुम जानते हो मारुति को? मारुतसुत हनुमानजी कौन थे? वे थे वायु के पुत्र।

इन मारुति की प्रतिष्ठा हम क्यों करते हैं?

क्या इसीलिए कि वे वीर योद्धा थे?

क्या इसीलिए कि उनमें अतुल शरीर-बल था?

उनके जैसा शरीर-बल हमें भी चाहिए।

पर केवल शरीर-बल हमारा आदर्श नहीं।

शरीर-बल ही हमारा आदर्श होता तो हम रावण की मूर्ति की स्थापना न करते।

पर हम रावण के बदले मारुति की स्थापना करते हैं।

किसलिए?

इसीलिए कि हनुमानजी का शरीर-बल, आत्म-बल से सम्पन्न था।

श्रीराम के प्रति हनुमानजी का जो अनन्य प्रेम था, उसी का फल था यह आत्म-बल।

इसी आत्म-बल की हम प्रतिष्ठा करते हैं।

आज हमने पाषाणखंड की नहीं, भावनाओं की प्रतिष्ठा की है।

हम चाहते हैं कि आत्म-बल की इसी भावना को आदर्श बनाकर हम भी मारुति बनें।

भगवान् हमें मारुति का-सा शरीर-बल दें।

भगवान हमें मारुति का-सा आत्म-बल दें।

भगवान हमें आत्म-बल की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य पालन का बल दें।"

श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने कलकत्ता में जनवरी १९७९ में एक प्रवचन में कहा, "**श्रीराम उपास्य हैं, उनकी उपासना करो। हनुमानजी का चरित्र अनुकरणीय है।**" श्रीहनुमानचरित में विद्या, योग्यता, मित्रता, कर्त्तव्यबोध, आत्म-बल, कर्त्तव्य-निष्ठा, बुद्धिकौशल, बाधाओं से संघर्ष, दया, ब्रह्मचर्य, उत्साह, दृढ़ निश्चय, श्रीरामकृपा का अवलम्ब, मर्यादा, पुरुषार्थ, नीति, निर्भीकता, अहंकार-शून्यता, उद्देश्य पर दृष्टि, अनपेक्षा, तत्त्व-

ज्ञान आदि के आदर्श अनुकरणीय हैं। उनमें आदर्श राजदूत के पाँचों लक्षण (निर्भीकता, विलक्षण स्मरण शक्ति, अकाट्य वाणी, शास्त्र-विद्या और विवेक) विद्यमान हैं।

प्रगल्भः स्मृतिमान् वाग्मी शस्त्रे शास्त्रे च निष्ठितः।
अभ्यस्तकर्मा नृपतेर्दूतो भवितुमर्हति ॥

श्रीहनुमान उगते सूर्य के पुजारी नहीं थे। वालि के बल, प्रताप, ऐश्वर्य और राज्य से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। वह उन सुग्रीव के साथ हैं जिनकी बुद्धि में सत्य को छोड़कर और कुछ भी नहीं है। लोभरूपी सुरसा, कामरूपी सिंहिका अथवा क्रोध-रूपी लंकिनी से श्रीहनुमानजी ने अपने गन्तव्य मार्ग को कभी अवरुद्ध नहीं होने दिया। उन आदर्शों को अपने सामने रखकर, उस पथ पर चलकर हम अपने जीवन को सार्थक और सरस बनाकर कृतकृत्य हो सकते हैं (अतः यह पुस्तक का दूसरा भाग है)।

३

पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराज पीताम्बरपीठ ने लिखा था : "साधना-शास्त्र में जो स्थान परमात्म-तत्व का है, वही स्थान गुरु-तत्व का है।—श्रीहनुमानजी को 'रामरहस्योपनिषद' में गुरुरूप में स्वीकार किया गया है। सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार एवं शाण्डिल्य, मुद्गल आदि महर्षियों ने श्रीहनुमानजी से श्रीराम-तत्व का ज्ञान प्राप्त किया है।.... शिवतत्व में बताया गया है और वही श्रीराम-तत्व है। दोनों का अभेद है।....परब्रह्मस्वरूप श्रीराम-तत्व का बोध श्रीहनुमानजी द्वारा ही होता है। इसीलिए श्रीराम-भक्तों को भी श्रीहनुमत्-साधना करना अत्यन्त आवश्यक है।

महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी ने एक बार कहा था—"श्रीमहावीरजी मन के समान वेग वाले और शक्तिशाली हैं।....मेरी हार्दिक इच्छा है कि उनका दर्शन लोगों को गली-गली में हो। मुहल्ले-मुहल्ले में श्रीहनुमानजी की मूर्ति स्थापित करके लोगों को दिखलायी जाये। जगह-जगह अखाड़े हों, जहाँ इनकी मूर्तियाँ स्थापित की जाएँ।"

४

सभी जानते हैं कि मानवमात्र के मूल अभीष्ट हैं शारीरिक सुख, मानसिक शांति और आत्मिक आनन्द। प्रत्येक सिद्धि के लिए साधना करनी पड़ती है। इसके लिए प्रत्येक मनुष्य को कार्य-शक्ति, विवेक-शक्ति और भाव-शक्ति जन्मजात मिली हुई है। श्रीहनुमानचरित उन साधना तत्वों का कोष है जिनको व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ करने से सुख की उपलब्धि, शांति की सुरक्षा और आनन्द (रस) की अनुभूति होती है। जिसकी जैसी महत्वाकांक्षाएँ हों इस कोष में से मणियाँ बटोर लें! साधना के लिए दृढ़-निश्चय चाहिए।

प्रत्येकमक्षरं मन्त्रः पत्रं प्रत्येकमौषधम्।
ज्ञानं प्रत्येकवचनं प्रयोक्ता तत्र दुर्लभः॥

संसार में जितने अक्षर हैं सब मन्त्र हैं और जितने पत्ते हैं सबके सब औषधि हैं, तथा जितनी वाणियाँ हैं सब ज्ञान हैं किन्तु प्रयोगकर्ता दुर्लभ होता है।

५

कुछ वर्ष पूर्व जबलपुर में श्रीराम-प्रेरणा हुई थी कि रिटायर होने पर श्रीहनुमानजी के चरित्र में प्रतिपादित आदर्शों का व्यावहारिक संकलन करने का प्रयास करूँ; स्वान्तः सुखाय

एवं युवाहिताय। श्रीराम ने अहेतुकी कृपा करके अपनी आज्ञा देने के लिए २९ जून १९८१ को बंगलूर में मेरे सुहृद श्री दुर्गाप्रसादजी मंडेलिया को माध्यम बनाया। तब अनायास मुझे सम्बोधित करते हुए उनके यह शब्द —

"हनुमानजी पर एक पुस्तक आप लिखिये।"

श्री मंडेलियाजी की जनसेवी भावनाओं एवं उदारता के लिए साभार साधुवाद। गीता प्रेस, गोरखपुर, को भी धन्यवाद जिनके द्वारा प्रकाशित अत्यन्त उपयोगी साहित्य से बहुत सहायता मिली।

इस पुस्तक में उपर्युक्त चारों प्रकार के भक्तों को भरपूर सामग्री मिलेगी। विशेषतः युवा पीढ़ी इस पुस्तक के दूसरे भाग को एक सच्चे मित्र, परम हितैषी एवं अनुभवी पथ-प्रदर्शक के रूप में पायेगी।

यह पुस्तक श्रीराम-प्रेरणा से लिखी गयी, श्रीहनुमान-कृपा ने लिखाई।

'आज धन्य मैं धन्य अति, यद्यपि सब बिधि हीन'।

जय श्रीराम!

—शिवदयाल

परमेश्वर भवन,
मुरार (ग्वालियर)
श्रीगीता जयन्ती
७ दिसम्बर १९८१

अनुक्रमणिका

पहला भाग : श्रद्धा

चित्र-सूची

संक्षेपाक्षर तालिका

वा० रा०	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण
मा०	श्रीरामचरित मानस
अ० रा०	अध्यात्म रामायण
सू० रा०	सूर रामचरितावली
दो०	दोहावली
गी०	गीतावली
क०	कवितावली
ऋ०	ऋग्वेद
भा०	श्रीमद्भागवत
ह० ना०	हनुमन्नाटक
रघु०	रघुवंशम् (कालिदास)
ह० वा०	हनुमान वाहुक
ह० सा०	हनुमान साठिका
ह० चा०	हनुमान चालीसा
सं० ह०	संकटमोचन हनुमानाष्टक

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।।

एक बार शरणागत होकर जो कहता 'प्रभु ! मैं तेरा'।
कर देता मैं अभय उसे सब भूतों से, यह व्रत मेरा ।।

श्रीरामचतुष्टय



मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

झाँकी शुभम्

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा ।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ।।*

(रामरक्षास्तोत्र ३१)

राम वामदिशि जानकी, लषण दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्याणमय, सुरतरु तुलसी तोर ।।

जिनके दाईं ओर श्री लक्ष्मण, वाईं ओर श्री जानकी और सामने श्री हनुमान विराजते हैं, उन श्रीरामचन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ।

---

* आदिष्टवान्यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः ।
तथा लिखितवान्प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ।।

(रामरक्षा १५)

भगवान श्री शंकर ने यह राम रक्षा स्तोत्र मुनि विश्वामित्र को सहसा स्वप्न में बताया । उन्होंने जागने पर ज्यों का त्यों लिख लिया ।

श्रीहनुमान द्वारा श्रीराम की स्तुति

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षण शीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥३॥

ॐकारस्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान श्रीराम को नमस्कार। आप सत्पुरुषों के लक्षण, शील एवं आचरण से युक्त हैं। आप संयमशील, लोकोपासनातत्पर, साधुता की परीक्षा के लिए कसौटी के समान और अत्यन्त ब्राह्मण-भक्त हैं। ऐसे महापुरुष भगवान श्रीराम को बार-बार नमस्कार।

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥४॥

भगवन्! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने स्वरूप के प्रकाश से गुणों के कार्यरूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओं का निरसन करने वाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध-बुद्धि से ग्रहण किये जाने योग्य, नाम-रूप से रहित और अहंकारशून्य हैं। मैं आपकी शरण में हूँ।

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥५॥

प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसों के वध के लिए ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्यों को शिक्षा देना है अन्यथा अपने स्वरूप में ही रमण करने वाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वर को सीताजी के वियोग में इतना दुःख कैसे हो सकता था!

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः ।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ।।६।।

आप साधु पुरुषों के आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं, त्रिलोकी की किसी भी वस्तु में आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजी के लिए मोह को ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मण का त्याग ही कर सकते हैं।

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ।।७।।

आपके ये व्यापार केवल लोक-शिक्षा के लिये ही हैं। लक्ष्मणाग्रज! उत्तम कुल में जन्म, सुन्दरता, वाक्-चातुरी, बुद्धि और श्रेष्ठ योनि—इनमें से कोई भी गुण आपकी प्रसन्नता का कारण नहीं हो सकता, यह वात दिखाने के लिए ही आपने इन सव गुणों से रहित हम वनवासी वानरों से मित्रता की है।

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत् रामं मनुजाकृतिं हरिं
उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ।।८।।

देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य—कोई भी हो, उसे सव प्रकार से श्रीरामरूप आपका ही भजन करना चाहिए; क्योंकि आप नररूप में साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े किये को भी वहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रितवत्सल हैं कि जव स्वयं दिव्यधाम को सिधारे थे, तब समस्त उत्तर कोसलवासियों को भी अपने साथ ही ले गये थे।

(श्रीमद्भागवत् ५/१९/३ से ८)

राम-गायत्री

ॐ दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात् ।

दाशरथाय-दशरथापत्याय । विद्महे—विजानीमः ।

सीतावल्लभाय—सीतापतये । धीमहि—ध्यायामः ।

तत्-तस्मात् । रामः-रामचन्द्रः । नः-अस्मान् । प्रचोदयात्- प्रेरयेत ।

दशरथ पुत्र के लिए हम ज्ञानार्जन करते हैं। सीतापति के लिए हम चिंतन करते हैं। वह राम हमको प्रेरित करे।

दशरथकुमार को जानता हूँ, सीतापति का ध्यान करता हूँ। वह राम हमारे कर्मों को याने सुसुप्त चेतना को प्रेरित करे, ऐसी प्रार्थना है।

राम मर्यादा की मूर्ति हैं। उनकी उपासना का फल तितिक्षा, धर्म, मर्यादा, सौम्यता, संयम और मैत्री है।

हनुमान-गायत्री

ॐअञ्जनीजाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि तन्नो हनुमान् प्रचोदयात् ।।

अञ्जनीजाय—अञ्जन्या जातः तस्मै अञ्जन्यापत्याय ।

विद्महे—विजानीमः । वायुपुत्राय—वायोः पुत्रः तस्मै, पवन-कुमाराय । धीमहि—ध्यायामः । तस्मात्—सः हनुमान—मारुतिः । नः—अस्मान् । प्रचोदयात्—प्रेरयेत्—नियोजयेत ।

अंजनीपुत्र के लिए ज्ञानार्जन करता हूँ। वायुपुत्र का ध्यान करता हूँ। अतः वह हनुमान हमको प्रेरित करें।

हनुमान—निष्ठा-शक्ति । फल—कर्त्तव्यपरायणता, निष्ठावान् विश्वासी—ब्रह्मचारी एवं निर्भय होना ।

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं मनसा स्मरामि ।।

मन के समान जिनकी गति है और वायु के समान जिनका वेग है, जो परम इन्द्रिय-विजेता, परम ब्रह्मचारी और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं, उन पवनपुत्र, वानर-समूह के अग्रणी, श्रीरामदूत हनुमानजी का मन से स्मरण करता हूँ ।

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ।।

मन के समान जिनकी गति है और वायु के समान जिनका वेग है, जो परम इन्द्रिय-विजेता, परम ब्रह्मचारी और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं, उन पवनपुत्र, वानर-समूह के अग्रणी, श्रीरामदूत हनुमानजी के चरणों में नमस्कार होता हूँ ।

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ।।

(राम रक्षा स्तोत्र ३३)

मन के समान जिनकी गति है और वायु के समान जिनका वेग है, जो परम इन्द्रिय-विजेता, परम ब्रह्मचारी और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं, उन पवनपुत्र, वानर-समूह के अग्रणी, श्रीरामदूत हनुमानजी की शरण को प्राप्त होता हूँ ।

व्याख्या

अतुलितबलधामं—बल के भंडार। श्री हनुमानजी स्वयं तो बलवान् हैं ही, दूसरों को बल प्रदान करने में भी समर्थ हैं।

हेमशैलाभदेहं—श्रीहनुमानजी का शरीर स्वर्णिम शैल की आभा के समान है। जो अपने शरीर और उसकी कान्ति को स्वर्णिम बनाना चाहे उसे अपने आपको कठिनाइयों में तपाना चाहिए।

दनुजवनकृशानुं—राक्षसकुलरूपी वन को भस्म करने के लिए अग्नि के समान। अपनी लक्ष्यसिद्धि के लिए मार्ग में आने वाले प्रत्येक कंटक को सूक्ष्म दृष्टि से पहचानकर विवेक के द्वारा उसका परिहार करके आगे बढ़ना चाहिए, आगे बढ़ना चाहिए।

ज्ञानिनामग्रगण्यम् अथवा बुद्धिमतां वरिष्ठम्—ज्ञानियों के शिरोमणि। श्रीराम के चिरकृपा का अधिकारी होने के लिए ऐसी क्षमता अर्जित करनी चाहिए कि निज विवेक-बल से अपने मार्ग में आने वाले को इस प्रकार विवश कर दे कि वह उसके बुद्धि-वैभव के सामने नतमस्तक हो जाये और हृदय से उसकी सर्वप्रकार सफलता के लिए आशीर्वाद दे।

सकलगुणनिधानं—सम्पूर्ण गुणों के आगार। व्यवहार में दक्षता होनी चाहिए। दुष्ट के साथ कठोरता और सज्जन के साथ विनम्रता का व्यवहार होना चाहिए।

वानराणामधीशं अथवा वानरयूथमुख्यं—वानरों के स्वामी। चंचलता को गंभीरता से, उद्धता को नम्रता से दबाना चाहिए। परन्तु आवश्यकतानुसार विवेक के प्रकाश में चंचलता को चंचलता से और उद्धता को उद्धता से दबाना चाहिए।

रघुपतिप्रियभक्तं—भगवान् श्रीरामचन्द्र के प्रिय भक्त। श्रीराम का प्रिय पात्र होने के लिए अनन्यभाव से सेवा, निपुणता और निराभिमानता एक साथ होनी चाहिए।

वातजातम् अथवा वातात्मजं—पवननन्दन। जीवन के किसी भी क्षेत्र में विशेष सफलता तभी मिलती है जब वायु के सदृश सतत् गतिशीलता रहे। रुके नहीं, बढ़ता रहे, बढ़ता रहे।

मनोजवम्—मन के समान गति वाले। पर-हित साधन में तीव्रगामिता होनी चाहिए।

मारुततुल्यवेगम्—वायु के समान गति वाले। स्वामी के कार्य-सम्पादन में तत्परता और अतिशीघ्रता चाहिए।

जितेन्द्रियं—अखंड ब्रह्मचर्य धारण करने वाले। इन्द्रियां पूर्णतया वश में रहनी चाहिए।

रघुपतिप्रियभक्तं नमामि

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥

अतुल वल के जो धाम हैं, सोने के पर्वत (सुमेरु) जैसी कान्ति और शोभायुक्त जिनका शरीर है, जो दैत्यों को उसी प्रकार नष्ट कर डालते हैं जैसे वन को अग्निदेव जला डालते हैं, जो ज्ञानियों में शिरो-मणि हैं, जो सम्पूर्ण सद्‌गुणों से युक्त हैं, ऐसे वानरों के स्वामी, श्रीरामचन्द्र के प्रिय भक्त पवन के पुत्र हनुमानजी को मैं सादर प्रणाम करता हूँ।

(मा० ५, श्लोक ३)

महात्म्य

जाके गति है हनुमान की।
ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषान की।।
अघटित-घटन, सुघट-विघटन, ऐसी विरुदावलि नहिं आन की।
सुमिरत संकट-सोच-विमोचन, मूरति मोद निधान की।।
तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपा विलोकनि, खानि सकल कल्यान की।।

(विनय-पत्रिका ३०)

गोस्वामी तुलसीदासजी की अनुभूति है कि जिसको एकमात्र हनुमानजी का ही आशा-भरोसा है उसकी सब प्रतिज्ञाएँ पूरी हो जाती हैं, यह सिद्धान्त वज्र और पत्थर की लकीर के समान अमिट है। हनुमानजी असम्भव को भी सम्भव और सम्भव को भी असम्भव करने में समर्थ हैं। ऐसी कीर्ति-गाथा किसी दूसरे की नहीं सुनी गई। हनुमानजी आनन्द का लय-स्थान हैं, आनन्द का आश्रय हैं, आधार हैं, आनन्द से परिपूर्ण पात्र हैं, स्वयं आनन्द रूप हैं और दूसरों को भी आनन्द देने वाले हैं। उनकी आनन्दमयी मूर्ति का स्मरण करते ही सारे संकट और चिंताएँ दूर हो जाती हैं। हनुमानजी की कृपा-दृष्टि समस्त कल्याणों की खानि है। वह जिस पर होती है उस पर श्रीगिरिजा, श्रीशिव, श्रीलक्ष्मण, श्रीरामचन्द्र और श्रीजानकी की सदा कृपा रहती है।

श्री हनुमत् ध्यान

उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकटरुचियुतं चारुवीरासनस्थं
मौन्जीयज्ञोपवीतारुणरुचिरशिखाशोभितं कुण्डलांकम् ।
भक्तानामिष्टदं तं प्रणतमुनिजनं वेदनादप्रमोदं
ध्यायेद्देवं विधेयं प्लवगकुलपतिं गोष्पदीभूतवार्द्धिम् ।।

उदय होते हुए प्रकाशमान् सूर्य जैसे तेजस्वी, मनोरम वीरासन से स्थित, मूंज की मेखला तथा यज्ञोपवीत धारण करने वाले, लाल वर्ण की सुन्दर शिखा वाले, कुण्डलों से सुशोभित, भक्तों को अभीष्ट फल देने वाले, मुनियों से वन्दित, वेदनाद से हर्षित, वानरकुल के स्वामी और समुद्र को गोपद के समान लांघ जाने वाले स्वरूप का ध्यान व्यापक या सर्वानुकूल प्रतीत होता है।

त्रिकाल नमन

प्रातः स्मरामि हनुमन्तमनन्तवीर्यं
श्रीरामचन्द्रचरणाम्बुजचञ्चरीकम् ।
लङ्कापुरीदहननन्दितदेववृन्दं
सर्वार्थसिद्धिसदनं प्रथितप्रभावम् ।।

प्रातःकाल मैं उन अनन्त पराक्रमी श्रीहनुमानजी का स्मरण करता हूँ जो श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलों के भ्रमर हैं, जिन्होंने लंकापुरी को जलाकर देवगण को आनन्दित किया, जो समस्त अर्थ-सिद्धियों के भंडार और लोकविश्रुत प्रभावशाली हैं।

माध्यं नमामि वृजिनार्णवतारणैका-
धारं शरण्यमुदितानुपमप्रभावम् ।
सीताऽऽअधिसिन्धुपरिशोषणकर्मदक्षं
वन्दारुकल्पतरुमव्ययमाञ्जनेयम् ।।

मध्याह्नकाल मैं उन अविनाशी अंजनानंदन श्रीहनुमानजी को प्रणाम करता हूँ जो भवसागर से उद्धार करने के साधन और शरणागत के पालक हैं, जिनका अनुपम प्रभाव लोकप्रसिद्ध है, जो श्रीसीताजी की अगाध मानसिक पीड़ा को शमन करने में परमप्रवीण हैं और जो वंदना करने वालों के लिए कल्पवृक्ष हैं।

सायं भजामि शरणोपसृताखिलार्ति-
पुञ्जप्रणाशनविधौ प्रथितप्रतापम् ।
अक्षान्तकं सकलराक्षसवंशधूम-
केतुं प्रमोदितविदेहसुतं दयालुम् ।।

सायंकाल मैं उन दयालु श्रीहनुमानजी का भजन करता हूँ जिनका प्रताप शरणागतों के सम्पूर्ण दुःखसमूह का विनाश करने के लिए जगविख्यात है, जो अक्षकुमार का अंत करने वाले और पूरे राक्षसवंश को अग्नि अथवा केतु के समान नष्ट करने वाले हैं और जिन्होंने जनकनंदिनी श्रीसीताजी को प्रमोदित किया।

प्रणाम

आँजनेयमतिपाटलाननं कांचनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ।।

जिनका कमल के समान मुख है और स्वर्ण के समान शरीर है, जो भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने के लिए कल्पतरु हैं, ऐसे पवननन्दन अंजनीकुमार का मैं ध्यान करता हूँ ।

उल्लंघ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ।।

जो समुद्र की जल-राशि को खेल-खेल में लांघकर लंका पहुँचे और वहाँ जानकीजी की शोकरूपी अग्नि से सारी लंका को भस्म कर दिया, उन आंजनेय को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ।

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ।।

जिन्होंने विशाल समुद्र को गौ के खुर से बने गड्ढे जितना छोटा बना दिया और राक्षसों को मच्छर जैसा समझा, उन रामायणरूपिणी महामाला के रत्न श्रीहनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयंकरम् ।।

अंजनी के सपूत, श्रीसीताजी के शोकनाशक, वानरों के स्वामी, अक्षकुमार के संहारकारी और लंका के लिए भयंकर श्रीमहावीर को मैं प्रणाम करता हूँ ।

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृत मस्तकाञ्जलिम् ।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ।।

जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजी का कीर्तन होता है वहाँ-वहाँ हाथ जोड़े हुए नतमस्तक, नेत्रों में प्रेमाश्रु भरे खड़े रहने वाले राक्षसों के नाशक श्रीहनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

श्री हनुमत्स्तोत्रम्

नमो हनुमते तुभ्यं नमो मारुतसूनवे।
नमः श्रीरामभक्ताय श्यामास्याय च ते नमः ।।१।।

हे हनुमानजी ! आपको नमस्कार है। हे मारुतनन्दन आपको प्रणाम है। हे श्रीराम के परमप्रिय भक्त, आपको नमस्कार है। श्याम मुख वाले आपका अभिवादन है।

नमो वानरवीराय सुग्रीवसख्यकारिणे।
लंकाविदाहनार्थाय हेलासागरतारिणे ।।२।।

श्रीरामचन्द्रजी की सुग्रीवजी के साथ मित्रता कराने वाले और लंका-दहन के उद्देश्य से खेल ही खेल में महासागर को लांघ जाने वाले, हे वानरवीर आपको प्रणाम है।

सीताशोकविनाशाय राममुद्रधराय च।
रावणान्तकुलच्छेदकारिणे ते नमो नमः ।।३।।

श्रीरामचन्द्र की मुद्रिका को ले जाने वाले, सीताजी के शोक का विनाश करने वाले और रावणकुल का संहार करने वाले, आपको वार-वार नमस्कार है।

मेघनादमखध्वंसकारिणे ते नमो नमः।
अशोकवनविध्वंसकारिणे भयहारिणे ।।४।।

अशोक वन का विध्वंस करने वाले, मेघनाद के यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले हे भयहारी, आपको वार-वार प्रणाम है।

वायुपुत्राय वीराय आकाशोदरगामिने ।
वनपालशिरश्छेदलङ्काप्रासादभञ्जिने ॥५॥
ज्वलत्कनकवर्णाय दीर्घलांगलधारिणे ।
सौमित्रिजयदात्रे च रामदूताय ते नमः ॥६॥

पवनपुत्र, वीरश्रेष्ठ, आकाश के मध्य विचरने वाले, अशोक वन के रक्षकों का सिर काटकर लंका की अट्टालिकाओं को नष्ट करने वाले, ज्वलन्त सोने जैसी शरीर-कान्ति और लम्वी पूँछ वाले सौमित्रि लक्ष्मणजी को विजय प्राप्त कराने वाले, ऐसे आप श्रीरामदूत को नमस्कार है।

अक्षस्य वधकर्त्रे च ब्रह्मपाशनिवारिणे ।
लक्ष्मणांगमहाशक्तिघातक्षतविनाशिने ॥७॥
रक्षोघ्नाय रिपुघ्नाय भूतघ्नाय च ते नमः ।
ऋक्षवानरवीरौघप्राणदाय नमो नमः ॥८॥

अक्षकुमार को मार डालने वाले, ब्रह्मपाश का निवारण करने वाले, लक्ष्मणजी के शरीर में महाशक्ति के आघात से उत्पन्न हुई क्षति से वचाने वाले, राक्षसों, शत्रुओं एवं भूतों का संहार करने वाले और वीर रीछ-वानरों को जीवन देने वाले, ऐसे हनुमानजी ! आपको वार-वार प्रणाम है।

परसैन्यबलघ्नाय शस्त्रास्त्रघ्नाय ते नमः ।
विषघ्नाय द्विषघ्नाय ज्वरघ्नाय च ते नमः ॥९॥

शस्त्रों-अस्त्रों का विनाश करने वाले, शत्रु-सेना के वल को नष्ट करने वाले, आपको नमस्कार है। विषनाशक, द्वेशनाशक और ज्वर-नाशक आपको प्रणाम है।

महाभयरिपुघ्नाय भक्तत्राणैककारिणे ।
परप्रेरितमन्त्राणां यन्त्राणां स्तम्भकारिणे ॥१०॥
पयः पाषाणतरणकारणाय नमो नमः ।
बालार्कमण्डलग्रासकारिणे भवतारिणे ॥११॥

नखायुधाय भीमाय दन्तायुधधराय च।
रिपुमाया विनाशाय रामाज्ञालोकरक्षिणे ॥१२॥
प्रतिग्रामस्थितायाथ रक्षोभूतवधार्थिने।
करालशैलशस्त्राय द्रुमशस्त्राय ते नमः ॥१३॥

महाभयंकर शत्रुओं का संहार करने वाले, भक्तों की एकमात्र रक्षा करने वाले, दूसरों के द्वारा प्रेरित मंत्रों-यंत्रों को स्तम्भित करने वाले और समुद्र-जल पर पत्थरों को तैराने वाले, आपको वार-वार प्रणाम है।

वालसूर्यमंडल का ग्रास करने वाले, भवसागर से तारने वाले, नख और दाँतों को आयुधरूप में धारण करके महान् भयंकर स्वरूप वाले, शत्रुओं की माया का विनाश करने वाले, श्रीराम-आज्ञा से लोगों की रक्षा करने वाले, राक्षसों और भूतों को मार डालने के प्रयोजन वाले, प्रत्येक ग्राम में मूर्तिरूप में स्थित विशाल पर्वत और वृक्षों को शस्त्र रूप में धारण करने वाले, आपको प्रणाम है।

बालैकब्रह्मचर्याय रुद्रमूर्तधराय च।
विहंगमाय सर्वाय वज्रदेहाय ते नमः ॥१४॥

परम् वालब्रह्मचारी, भगवान शंकर के अवतार, आकाश में विचरने वाले, वज्र के समान कठोर शरीर वाले, सर्वस्वरूप, आपको नमस्कार है।

कौपीनवाससे तुभ्यं रामभक्तिरताय च।
दक्षिणाशाभास्कराय शतचन्द्रोदयात्मने ॥१५॥
कृत्याक्षतव्यथाघ्नाय सर्वक्लेशहराय च।
स्वाम्याज्ञापार्थसंग्रामसंख्ये संजयधारिणे ॥१६॥
भक्तान्तदिव्यवादेषु संग्रामे जयदायिने।
किलकिलाबुबुकोच्चार घोरशब्दकराय च ॥१७॥
सर्पाग्निव्याधिसंस्तम्भकारिणे वनचारिणे।
सदा वनफलाहारसंतृप्ताय विशेषतः ॥१८॥
महार्णवशिला बद्धसेतुबन्धाय ते नमः।

मात्र कौपीन पहनने वाले, निरंतर श्रीराम-भक्ति में तल्लीन रहने वाले, दक्षिण दिशा के लिए भास्कर सदृश, सौ चन्द्रमाओं जैसी शरीर-कान्ति वाले, कृत्या द्वारा किये गये आघात की व्यथा का नाश करने वाले, समस्त कष्टों का निवारण करने वाले, स्वामी की आज्ञा से पृथापुत्र अर्जुन के संग्राम में मैत्रीभाव स्थापित करने वाले, सर्वथा विजयी, भक्तों को दिव्य वाद-विवाद और रण में विजय प्राप्त कराने वाले, किलकिला और बुबुक का घोर उच्चार करने वाले, सर्प, अग्नि और व्याधि को स्तम्भ करने वाले, वन में विचरने वाले, सदा वन के फलों के आहार से पूर्णतः संतुष्ट हो जाने वाले, और महासागर पर शिला-खंडों से सेतु का निर्माण करने वाले, आपको प्रणाम है।

वादे विवादे संग्रामे भये घोरे महनवने ॥१९॥
सिंहव्याघ्रदिचौरेभ्यः स्तोत्रपाठाद्भ्यं न हि।
दिव्ये भूतभये व्याधौ विषे स्थावरजंगमे ॥२०॥
राजशस्त्रभये चोग्रे तथा ग्रहभयेषु च।
जले सर्वे महावृष्टौ दुर्भिक्षे प्राणसम्प्लवे ॥२१॥
पठेत् स्तोत्रं प्रमुच्येत भयेभ्यः सर्वतो नरः।
तस्य क्वापि भयं नास्ति हनुमत्स्तवपाठतः ॥२२॥

इस स्तोत्र का पाठ करने से वाद-विवाद, संग्राम, महान भय, जंगली सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं से और चोरों से भय नहीं होता।

इस हनुमत्स्तोत्र का पाठ करने से मनुष्य दैविक एवं भौतिक भय, व्याधि, स्थावर जंगम, विष, राजा के भयंकर शस्त्र-भय, ग्रहों का भय, जल, सर्प, महावृष्टि, दुर्भिक्ष, प्राणसंकट आदि सब प्रकार के भयों से मुक्त हो जाता है और कहीं भी किसी प्रकार का भय नहीं रहता।

सर्वदा वै त्रिकालं च पठनीयमिमं स्तवम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥२३॥

इस स्तोत्र का नित्यप्रति त्रिकाल (प्रातःकाल, मध्याह्नकाल

और सायंकाल) पाठ करने से सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति हो जाती है, इसमें कदापि संदेह नहीं करना चाहिए।

विभीषणकृतं स्तोत्रं ताक्ष्येंण समुदीरितम्।
ये पठिष्यन्ति भक्त्या वै सिद्धयस्तत्करे स्थिताः ॥२४॥

विभीषणजी द्वारा किये गये इस स्तोत्र का गरुड़जी ने सम्यक् प्रकार से पाठ किया था। जो कोई भक्तिपूर्वक इसका पाठ करेगा, उसको समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जायेंगी।

(श्री सुदर्शन संहिता में विभीषण-गरुड़ संवाद के प्रसंग में, विभीषणजी द्वारा)

यशोगान

अगस्त्य मुनि से विनयपूर्वक श्रीराम ने कहा—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम ।।

(वा० रा० ७।३५।२)

महर्षि ! निःसंदेह वालि और रावण के वल की कहीं तुलना नहीं थी, परन्तु मैं समझता हूँ कि इन दोनों का वल भी हनुमान की वरावरी नहीं कर सकता था।

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनुमति कृतालया ।।

(वा० रा० ७।३५।३)

शूरता, दक्षता, वल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव, ये सभी गुण हनुमान में परिपूर्ण हैं।

श्रीरामचन्द्रजी के युक्तियुक्त वचन सुनकर महर्षि अगस्त्य वोले—

सत्यमेतद् रघुश्रेष्ठ यद् ब्रवीषि हनूमति।
न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतौ परः ।।

(वा० रा० ७।३५।१५)

रघुश्रेष्ठ श्रीराम ! आपने जो कुछ हनुमानजी के विषय में कहा वह सव सत्य है। वल, बुद्धि और गति में कोई इनकी वरावरी नहीं कर सकता।

अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा।
न वेत्ता हि बलं सर्वं बली सन्नरिमर्दन ॥

(वा० रा० ७।३५।१६)

रघुनन्दन ! पूर्व-काल में ऐसे मुनियों ने इन्हें शाप दिया था, जिनका शाप व्यर्थ नहीं जाता, कि वल रहने पर भी इनको अपने पूरे वल का पता नहीं रहेगा।

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्य-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥

पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीति का विवेक, गम्भीरता, चातुर्य, उत्तम-वल और धैर्य, ये सव हनुमानजी से वढ़कर किसी में नहीं हैं।

(वा० रा० ७।३६।४४)

जय-जयकार

जयति बात-संजात, विख्यातविक्रम, बृहद्-
बाहु, बलविपुल, बालधि बिसाला।
जातरूपाचलाकारविग्रह, लसल्लोम
विद्युल्लता ज्वालमाला ।।१।।

हे पवनपुत्र ! आपकी जय हो। आपका पराक्रम प्रसिद्ध है। आपकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ हैं। अपार बल है, विशाल पूँछ है। आपका शरीर सुमेरु पर्वत के समान विशाल एवं तेजस्वी है। आपकी रोमावली बिजली की रेखा की माला के समान शोभित है।

जयति बालार्कवर-बदन-पिंगल, नयन,
कपिस-कर्कश-जटाजूटधारी।
विकट भृकुटी, बज्र दसन नख,
बैरि - मदमत्तकुंजर - पुंज - कुंजरारी ।।२।।

आपका सुन्दर मुख उदयकालीन सूर्य के समान लाल है, पीले नेत्र हैं, कड़ी जटाओं का जूड़ा धारण किये हुए हैं, भौहें टेढ़ी हैं, वज्र के समान दाँत और नख हैं। आप शत्रुरूपी मदोन्मत्त हाथियों के समूह को विदीर्ण करने वाले शेर के समान हैं। आपकी जय हो।

जयति भीमार्जुन-व्याल सूदन-गर्व-
हर, धनंजय-रथ-त्राण-केतू।
भीष्म - द्रोण - कर्णादि - पालित, काल
दृकसुयोधन - चमू - निधन - हेतू ।।३।।

आप भीमसेन, अर्जुन और गरुड़ के गर्व को चूर करने वाले, अर्जुन के रथ की पताका पर बैठकर रक्षा करने वाले, दुर्योधन की उस

महान् सेना के नाश करने के कारणस्वरूप हैं जो काल की दृष्टि के समान भयानक और भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण आदि से रक्षित थी। आपकी जय हो।

जयति गतराजदातार, हंतार
संसार - संकट, दनुज - दर्पहारी।
ईति - अतिभीति - ग्रह - प्रेत-चौरानल-
व्याधिबाधा - शमन घोरमारी ।।४।।

आप सुग्रीव को पुनः राज्य-सिंहासन पर स्थापित करने वाले, संसार के संकटों का नाश करने वाले, दानवों के दर्प को हरने वाले हैं। आप अतिवर्षा, सूखा, टिड्डी, चूहे, पक्षी और राज्य के आक्रमण-रूप खेती में वाधक ईति, महाभय, ग्रह, प्रेत, चोर, अग्निकांड, रोग, वाधा, महामारी आदि संकटों का नाश करने वाले हैं। आपकी जय हो।

जयति निगमागम व्याकरण करनलिपि,
काव्य कौतुक - कला-कोटि-सिंधो।
साम - गायक, भक्त - कामदायक,
वामदेव, श्रीराम - प्रिय - प्रेम - बंधो ।।५।।

आप वेद, शास्त्र और व्याकरण पर भाष्य करने वाले हैं। आप काव्य कौतुक एवं करोड़ों कलाओं के सिंधु हैं। आप सामवेद के गायक, भक्तों की कामना पूर्ण करने वाले, साक्षात् शिवरूप हैं और श्रीराम के प्रिय प्रेमीवन्धु हैं। आपकी जय हो।

जयति घर्मांसु - संदग्ध - संपाति-
नवपक्ष-लोचन - दिव्य - देहदाता ।
कालकलि - पाप संताप - संकुल सदा,
प्रनत तुलसीदास तात - माता ।।६।।

आप सूर्य से जले हुए सम्पाती गीद्ध को नये पंख, नेत्र और दिव्य शरीर के देने वाले हैं और कलिकाल के पाप-संतापों से ओतप्रोत इस शरणागत तुलसीदास के माता-पिता हैं। आपकी जय हो।

(विनय-पत्रिका—२८)

ऋग्वेद में श्रीहनुमान

सहस्रधारे वितते पवित्र आ
वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः
स्पशः स्वंचः सुदृशो नृचक्षसः॥

(ऋग्वेद ९।७३।७)

महाविद्वान् श्रीनीलकण्ठ सूरि का भाष्य :

...सहस्रेति। आ समन्ताद् वितते व्याप्ते महाविष्णो सहस्रधारे सोमांशुरूपेण तत्तदिन्द्रियवृत्यभिव्यक्तिचिदा सा सरूपेण वानन्त-प्रवाहे पवित्रे पावने निमित्तभूते सति मनीषिणो जितचेतसः कवयः काव्यरचनसमर्थाः वाचं स्वीयां पुनन्ति भगवद्गुणगणकीर्तनेन पवित्री-कुर्वन्ति वाल्मीकिप्रभृतयः। एषां कवीनां मध्ये रुद्रास—बहुत्वं पूजायां रुद्रो हनुमान् इषिराषः, इषिरोऽद्भुतगतिः, अद्रुहः—अद्रोही, स्पशः—चारः सीतान्वेषकः चरोऽभूदित्यर्थः। स च स्वंचः शोभनगमनः। सुदृशः—सम्यक्परीक्षकः। नृचक्षसः—नरं सीतारूपं चष्टे पश्यतीति नृचक्षाः; सीतां ददर्शेत्यर्थः। वस्रवत् रुद्रोऽपि रामायणमकरोत्तत्र च रामदास्यमधिकम्।' एवमन्योऽपि रामस्तोत्रेण वाचं दास्येन देहं न पुनीयदित्यर्थः।

अर्थ : सोम-किरणों के रूप में सुधा की सहस्र-सहस्र धाराएँ अथवा स्वरूप से ही सच्चिदानन्दमय अनन्त प्रवाह प्रकट करने वाले, सर्वत्र व्यापक, परम पवित्र महाविष्णु (श्रीराम) के निमित्त मनीषी

कवि वाल्मीकि आदि उनके गुणगान के द्वारा अपनी वाणी को पवित्र करते हैं। इन्हीं कवियों में रुद्र (के अवतार) हनुमानजी भी हैं, जो स्वभावतः अद्रोही (किसी के साथ द्वेष न रखने वाले) हैं। ये इषिर—अद्‌भुत गति वाले, स्पश—गुप्तचर (अर्थात् सीता का अन्वेषण करने वाले दूत), स्वंच—वहुत सुन्दर संचरण वाले और नृचक्षा—मानव-मूर्ति सीता के प्रत्यक्षदर्शी हैं। इन्होंने सीता को लंका में ढूँढ़ निकाला और उनका साक्षात् दर्शन किया। वाल्मीकि की भांति रुद्र (हनुमान) भी रामायण (हनुमन्नाटक आदि) की रचना करने वाले हैं, किन्तु उनमें श्रीराम के प्रति दास्यभाव की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। इसी तरह दूसरे लोगों को भी चाहिए कि वे श्रीराम के स्तवन से वाणी को तथा दास्य-सेवा से अपने शरीर को पवित्र करें।

संदर्भ—श्रीहनुमानजी ने अशोक वन उजाड़ा और रखवालों को मारपीट कर उन्हें इतना व्याकुल कर दिया कि जो वचे उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। उन्होंने समझा कि देवता लोग आकर उपद्रव कर रहे हैं। उन्होंने जाकर रावण को यह सव समाचार दिया।

देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्
वना वृश्चन्तो अभि विड्‌मिरायन्।
निसुद्रुवन्दधतो वक्षणासु
यत्रा कृपीटमनु तद्‌दहन्ति॥

(ऋग्वेद १०।२८।८)

वहुत से देवता लोग अशोकवन में आ गये हैं। हम लोगों के फरसे आदि छीन कर धारण कर लिये हैं और हम लोगों के संतान आदि परिवार सहित अशोक वन को एकदम उजाड़ते हुए इधर-उधर चारों ओर दौड़ते हैं। अत्यन्त शीघ्रगामी अग्नि जैसे घरों को जलाते हुए, पीछे से अलग पड़े हुए काष्ठ आदि को जला डालते हैं। इसी तरह वे एक-एक पेड़-कुंज आदि को नष्ट करते हैं। तव आसपास के वृक्ष भी नष्ट हो जाते हैं।

यह सुनकर रावण के मन में विचार आया—

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहन्तं चिद्दृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ।।

(ऋग्वेद १०।२८।९)

जैसे कोई तुच्छ पशु शशक जैसे तीक्ष्ण धार वाली असि को निगलने की चेष्टा करके, अपना ही अंत करता है। अथवा जैसे कोई दूर से मिट्टी का ढेला मारकर पर्वत को चूर-चूर करना चाहता है, वही दशा मेरी हो रही है। जैसे नवजात वछड़ा कुछ दिनों में वढ़कर वड़ा परिश्रमी बैल वन जाता है वैसे ही अत्यन्त महान् और निश्चिन्त चैतन्य-तत्व आत्मा को छोड़कर तुच्छ शारीरिक सुख के लिए मैं लोगों को पीड़ा देता हूं जिससे मेरा पाप वहुत वढ़ गया है।

रावण के मन में ऐसा ज्ञान तो उत्पन्न हुआ परन्तु तमः-प्रधान होने के कारण क्षणभर में ही उसका वह ज्ञान लुप्त हो गया।

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान् गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ।।

(ऋग्वेद १०।२८।१०)

आकाश में पक्षी के समान विचरने वाले मायावी रावण ने अनेक यत्न करके छेदन-भेदन आदि से कभी भी दुखी न होने वाले हनुमानजी को बंधवाने के लिए ब्रह्मपाश का प्रयोग करवाया, परन्तु हनुमानजी ब्रह्मपाश में घिरे होने पर भी सिंह के समान चारों ओर घूमते थे जैसे प्यास से व्याकुल हो भैंसा जल की ओर ही जाता है और जैसे मायिक विषयों की ओर जाने वाला मन महान् योगियों की चित्तवृत्ति के विरुद्ध रोके जाने पर भी रोकने वाले मनुष्यों को या उनकी चित्तवृत्तियों को वह मन खींच ही ले जाता है, वैसे ही राक्षसगण भी हनुमानजी को रोक रखने में सर्वथा असमर्थ थे, तो भी ब्रह्मपाश में बाँधकर खींचने लगे।

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।
अष्टाबन्धुरं बहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ।।

(ऋग्वेद १०।५३।७)

जब ब्रह्मपाश में बंधे होने पर भी हनुमानजी पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ तो देवतागण हनुमानजी की प्रार्थना करने लगे—"हे परम वैष्णव श्रीहनुमानजी महाराज ! राक्षस आपको बाँधने आया, वह स्वयं ही मृत्युपाश में बंध गया। परन्तु कृपा करके आप इस ब्रह्मपाश-बंधन को अभी मान लीजिये जिससे ब्रह्मपाश का अपमान न हो, भले ही बाद में इसे खंड-खंड कर डालियेगा। दो हाथ, दो पाँव, दो कंधे और दोनों ऊरु—इस तरह आठ जगह बंधे हुए अपने शरीर को कृपया लंकापुरी में ले जाइये जिससे देवतागण अपना अभीष्ट प्राप्त करें।"

संदर्भ—जब रावण ने श्रीहनुमानजी की पूँछ में आग लगवा दी और इस बात को अशोक वाटिका में श्रीसीताजी ने राक्षसियों से सुना तब—

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥

(ऋग्वेद १०।८७।१)

राक्षसों का संहार करने वाले और परम वेग वाले श्रीरामदूत हनुमानजी को इस दशा में देखकर सीताजी अग्निदेव से प्रार्थना करने लगीं। आंजनेय के पिता पवन के मित्र, परम-पवित्र एवं प्रतिष्ठित अग्निदेवता से वत्स हनुमान के कल्याण की कामना करती हूं। पूर्व में जो यज्ञों द्वारा देदीप्यमान संदीपित किये गये हैं, वही अग्निदेव स्वयं मेरे प्रिय वात्सल्यभाजन हनुमान की सदैव दिन-रात हिंसारत सभी कष्टों से रक्षा करते हैं।

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपिधत्स्वासन् ॥

(ऋग्वेद १०।८७।२)

हे अग्निदेव ! आप लौहमय दाढ़ वाले हैं। आप अपनी प्रज्वलित लपट से इन राक्षसों को मार डालिये। आप भूतकाल की सारी बातों को जानने वाले हैं। हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! अपनी महान् प्रज्वलित

जिह्वा से असुरों को सब ओर से खा जाइये। मांसाहारी राक्षसों को एकत्र करके अपने मुख से चबा डालिये।

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम्।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः॥

(ऋग्वेद १०।८७।६)

अत्यंत तेज बाण चलाने वाले सर्वज्ञ अग्निदेव! इस समय वे राक्षसगण जहाँ कहीं भी हों चाहे, बैठे हों, या जल में छिपे हों या निद्रा में या आनन्द में हों अथवा आकाश में विचरते हों या मार्ग में जाते हुए हों, उन सब राक्षसों को और उस रावण के घर की सम्पूर्ण वस्तुओं को और सभी राक्षसों के बाणों को पैना करते हुए उन्हें बींध डालिये।

मंत्र

अंजनीगर्भ संभूत, कपीन्द्र सचिवोत्तम।
रामप्रिय नमस्तुभ्यं हनुमन् रक्ष सर्वदा।।

अंजनीगर्भ संभूत—माता अंजनी के गर्भ से उत्पन्न। इससे कुल की उत्तमता बताई गई है, और स्वयं संभूत हुए, उत्पन्न हुए (गर्भवास नहीं हुआ)।

कपीन्द्र सचिवोत्तम—कपियों के इन्द्र (राजा सुग्रीव) के उत्तम सचिव। इससे उत्तम बुद्धिमत्ता बताई गई है और राजनीतिज्ञता दर्शायी गई है।

रामप्रिय नमस्तुभ्यं—राम के प्रिय तथा राम जिनके प्रिय हैं, याने हनुमानजी राम के प्रिय हैं और राम हनुमान के प्रिय हैं। इससे सर्वोत्तम भक्ति बताई गई है।

हनुमन्—हे हनुमानजी आपको नमस्कार हो।

सर्वदा—निरंतर सब समय।

रक्ष—रक्षा करें।

हे अंजनी के गर्भ से स्वयं प्रकट होने वाले! हे कपियों के राजा सुग्रीव के उत्तम मंत्री! हे राम के प्रिय! हे हनुमानजी! आपके लिए नमस्कार करता हूँ, मेरी रक्षा करो।

मंत्र

मर्कटेश महोत्साह सर्वशोकविनाशन्।
शत्रून् संहर मां रक्ष श्रियं दापय मे प्रभो।।

मर्कटेश—वानरों के ईश। वानर सेनापति।

महोत्साह—महान उत्साही। उत्साह विजय का प्रतीक है, ये सर्वत्र विजयी हुए हैं, कहीं मात नहीं खाये हैं।

सर्वशोक विनाशन – सब प्रकार के शोकों के विनाश करने वाले। आधि-व्याधि दोनों को शोक कहते हैं।

शत्रून् संहर—शत्रुओं का संहार करो। शत्रु वाह्य और आंतरिक दो प्रकार के होते हैं। वाह्य 'प्राणी' और आंतरिक 'इन्द्रियाँ'। दोनों प्रकार के शत्रुओं का संहार करो।

मां रक्ष—मेरी रक्षा करो।

प्रभो—हे हनुमानजी।

श्रियं—लक्ष्मी, शोभा, यश, कीर्ति, धन, संपत्ति, वैभव ये सब श्रिय हैं।

दापय—मुझे प्रदान करो।

हे मर्कटों (वानरों) के ईश, सेनापति, हे महान् उत्साही! हे सब शोकों को हरने वाले! हे प्रभो स्वामिन्! शत्रुओं का संहार करो, मेरी रक्षा करो, भलाई दो। यश प्रदान करो।

शिवावतार-श्रीहनुमान

ॐ रुद्रमूर्तये करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।
ॐ रुं रुद्रमूर्तये अस्त्राय फट्।

सदाशिवाय ब्रह्मरुद्रावतारिणे...मृत्युंजय, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, कालभैरव...ॐ नमो हनुमते...एकादशरुद्राय।

रुद्रावतार संसारदुःखभारापहारक।
लोललांगूलपातेन ममारातीन्निपातय।।
अंजनीगर्भसम्भूतो हनुमान् पवनात्मजः।
यदा जातो महादेवो हनुमान् सत्यविक्रमः।।

यो वै चैकादशो रुद्रो हनुमान् स महाकपिः।
अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः।।

यशोवितानधवलीकृत जगत्त्रितयाय च।
वज्रदेहीति चोक्ता हि रुद्रावतारपदं तथा।।

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान।।
जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान।।
(दोहावली १४२-४३)

सज्जन लोग उन्हीं का आदर करते हैं जिन्हें श्रीराम से प्रीति

हो। इसीलिए शिवजी ने वानर का शरीर धारण किया और हनुमान होकर श्रीराम की भक्ति की। श्रीराम की सेवा में क्या रस है, इसका अनुमान इस बात से लगाइये कि देवताओं के पुरखा महादेवजी ने अपना शिव रूप छोड़कर हनुमान रूप धारण कर लिया।

जयति रनधीर, रघुबीरहित, देवमनि,
रुद्र-अवतार संसार-पाता।

(विनय २५।३)

आप सबसे अधिक धैर्यवान, वीर, श्रीराम की सेवा के लिए शिव के अवतार और संसार के रक्षक हैं। आपका शरीर ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनियों के आशीर्वाद से रचा गया है। आप निर्मल गुणों और बुद्धि के भंडार एवं प्रदाता हैं। ऐसे हनुमानजी आपकी जय हो।

जयति मर्कटाधीस, मृगराज-विक्रम,
महादेव, मुद-मंगलालय, कपाली।

(विनय २६।१)

कपिराज हनुमानजी ! आपकी जय हो। आप सिंह के समान पराक्रमी हैं, देवताओं में श्रेष्ठ हैं, आनन्द और कल्याण की निधि हैं, शिव के अवतार हैं, मोह, मद, क्रोध, काम आदि दुर्गुणों से भरी हुई इस संसाररूपी अंधेरी रात का अंधकार मिटा डालने के लिए आप साक्षात् सूर्य हैं। आपकी जय हो।

जयति मंगलागार, संसारभारापहर,
बानराकार-विग्रह पुरारी।

(विनय २७।१)

हे मंगलमूर्ति हनुमानजी ! आपकी जय हो। आप कल्याण के धाम, संसार का भार हरने वाले, वानररूप में साक्षात् श्रीशिवजी हैं। आप राक्षसरूपी पतंगों को भस्म करने वाली श्रीराम की क्रोधाग्नि की ज्वाला के मूर्तिमान् स्वरूप हैं।

मंगलमूर्ति

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
सकृत् प्रसंगादघमाशु हन्ति तत्।
पवित्रकीर्ति तमलंघयशासनं
भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः॥

(श्रीमद्भा० ४।४।१४)

मंगलमूरति मारुतनंदन। सकल-अमंगल-मूल-निकंदन॥
पवनतनय संतन-हितकारी। हृदय विराजत अवध-बिहारी॥

(विनय ३६।१-२)

पवनकुमार हनुमानजी तो कल्याण की मूर्ति हैं। ये समस्त अमंगलों की जड़ ही नष्ट कर डालते हैं। हनुमानजी स्वयं संतों का सदा हित करते रहते हैं। उनके हृदय में श्रीराम सदा-सर्वदा विराजमान रहते हैं।

कथा है कि एक वार शिवजी ने श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति की और कहा—"प्रभु! मैं दास्यभाव से आपकी सेवा करना चाहता हूँ। कृपया मेरे इस मनोरथ को पूरा कीजिये।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"तथास्तु"। श्रीरामावतार में शिवजी ही हनुमानजी के रूप में अवतीर्ण होकर श्रीराम के प्रमुख सेवक एवं दूत वने।

जव सीताहरण होने पर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण सहित सीताजी को खोजते हुए ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँचे और वहाँ हनुमानजी ने आकर उनसे भेंट की, अपना परिचय दिया, तव श्रीराम ने उन्हें सेवा-मंत्र से दीक्षित किया—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(मानस ४।३)

श्री हनुमानजी के स्मरण का महात्म्य

मंजुल मंगल मोदमय मूरति मारुत पूत ।
सकल सिद्धि कर कमल तल सुमिरत रघुबर दूत ।।
धीर बीर रघुबीर प्रिय सुमिरि समीर कुमारु ।
अगम सुगम सब काज करु करतल सिद्धि विचारु ।।

(दोहावली २२९-२३०)

श्रीरामजी के दूत पवनपुत्र श्री हनुमानजी मनोहर, मंगल और आनन्द की मूर्ति हैं। उनका स्मरण करते ही सब सिद्धियाँ अपने आप सुलभ हो जाती हैं।

धीर, वीर और श्रीरघुवीर के प्रिय पवनकुमार श्री हनुमानजी का स्मरण करने से कैसे भी अगम कार्य हों, सुगम हो जायेंगे, यह निश्चय रखो, और निश्चिन्त रहो कि उनकी सफलता तुम्हारे हाथ में रखी रहेगी।

श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये

दूसरा भाग

श्रीहनुमान चरित

यदि वास्ति त्वभिप्रायः संश्रोतुं तव राघव।
समाधाय मतिं राम निशामय वदाम्यहम्॥

(वा० रा० ७।३५।१८)

श्रीराम! यदि हनुमानजी का चरित सुनने की आपकी हार्दिक इच्छा हो तो चित्त को एकाग्र करके सुनिये। मैं सुनाता हूँ।

वन्दना

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।

(मा० १।१६)

श्री सीतारामजी के गुणग्राम रूपी पुण्य वन में विहार करने वाले वाल्मीकिजी (जिन्होंने श्रीराम और सीताजी के वास्तविक तत्व को समझकर रामायण में उसका निरूपण किया है) और हनुमानजी, (जिन्होंने श्रीराम और सीताजी के लोकमंगलकारी कीर्तन में मग्न रहते हुए श्रीराम और सीताजी के सम्पूर्ण शुद्ध तत्व को जानकर व्यवहारिक रूप में चरितार्थ किया) दोनों को मैं प्रणाम करता हूँ।

महावीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

(मा० १।१६।५)

मैं महावलवान हनुमानजी की विनती करता हूँ जिनके यश का स्वयं श्रीरामचन्द्रजी ने वर्णन किया है।

सो०—प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

(मा० १।१७)

मैं पवनकुमार हनुमानजी को प्रणाम करता हूँ जो दुष्टरूपी वन को भस्म करने के लिए अग्नि-रूप हैं, सघन, दृढ़ ज्ञान वाले हैं और जिनके हृदयरूपी घर में धनुषवाणधारी श्रीरामचन्द्र का वास है।

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।

(मा० ५।श्लो० ३)

अतुल बल के जो धाम हैं, सोने के पर्वत (सुमेरु) जैसी कान्ति और शोभायुक्त जिनका शरीर है, जो दैत्यों को उसी प्रकार नष्ट कर डालते हैं जैसे वन को अग्निदेव जला डालते हैं, जो ज्ञानियों में शिरोमणि हैं, जो सम्पूर्ण सद्‌गुणों से युक्त हैं, ऐसे वानरों के स्वामी श्रीरामचन्द्र के प्रिय भक्त, पवन के पुत्र हनुमानजी को मैं सादर प्रणाम करता हूँ ।

योग्यता

श्रीराम और लक्ष्मण वन में सीताजी को खोजते हुए ऋष्यमूक पर्वत की तलहटी में जा पहुँचे। उस पर्वत पर वानरशिरोमणि सुग्रीव अपने भाई वालि के भय से बैठे हुए थे। श्रीराम और लक्ष्मण को श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए वीर वेष में आते देख सुग्रीव उद्विग्न हृदय से चारों ओर देखने लगे। वे अपने मन को स्थिर न रख सके। वे अत्यन्त भयभीत हो गये। धर्मात्मा, राजधर्म के ज्ञानी सुग्रीव ने मंत्रियों के साथ परामर्श किया, अपनी दुर्बलता और वालि की प्रवलता का वर्णन यािक। उन्हें यह शंका हुई कि हो सकता है ये दोनों वीर वालि के भेजे हुए आ रहे हैं और चीर वस्त्र इसलिए धारण किये हैं जिससे हम इन्हें न पहचान सकें। वहुत डरे हुए वे हनुमानजी से वोले, "सुनो, ये दोनों पुरुष वल और रूप के निधान हैं।"

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया।।
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा।।
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना।।

(मा० ४।१ से १½)

हनुमानजी ने समझाया कि आपको अपने जिस पापाचारी भाई से भय हो रहा है वह वालि यहाँ नहीं आ सकता। इसलिए भय का कोई कारण ही नहीं है और यह भी कहा—

अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवंगम।
लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ।।

(वा० रा० ४।२।१७)

आश्चर्य की वात है कि आप अपनी वानरी चपलता को प्रगट कर रहे हैं। हे वानरराज ! आपका चित्त चंचल है इसलिए आप अपने को विचार-मार्ग पर स्थिर नहीं रख पाते हैं। (जव चित्त चंचल होता है तव विचार अस्थिर हो जाते हैं)

बुद्धिविज्ञानसम्पन्न इंगितैः सर्वमाचर।
नह्यबुद्धिं गतो राजा सर्वभूतानि शास्ति हि ॥

(वा० रा० ४।२।१८)

बुद्धि और विज्ञान से सम्पन्न होकर दूसरों की चेष्टाओं के द्वारा उनके मनोभाव को समझना चाहिए और उसके अनुसार सभी आवश्यक कार्य करने चाहिए क्योंकि जो राजा बुद्धि-बल का आश्रय नहीं लेता वह सम्पूर्ण प्रजा पर कुशलपूर्वक शासन नहीं कर सकता।

सुग्रीव ने उत्तर दिया—

दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ।
कस्य न स्याद् भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुरसुतोपमौ ॥

(वा० रा० ४।२।२०)

देखो तो इन दोनों वीरों की भुजाएँ लंवी और नेत्र वड़े-वड़े हैं। यह धनुष वाण धारण किये इनकी शोभा देवकुमारों जैसी है। इन दोनों को देखकर कौन भयभीत नहीं हो जाएगा ?

अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिणः।
विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि ॥

(वा० रा० ४।२।२२)

मनुष्य को चाहिए कि छद्म वेष में विचरने वाले शत्रुओं को विशेष रूप से पहचानने की चेष्टा करे क्योंकि वे दूसरों पर तो अपना विश्वास जमा देते हैं परन्तु स्वयं किसी का विश्वास नहीं करते और अवसर पाते ही उन विश्वासी व्यक्तियों पर प्रहार कर बैठते हैं। अतः तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके जाकर देखो और अपने हृदय में उनका यथार्थ परिचय प्राप्त कर

मुझे इशारे से समझा देना।

धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई।।
पठए बालि होंहि मन मैला। भागों तुरत तजों यह सैला।।

(मा० ४।१½ तथा २½)

लक्षयस्व तयोर्भावं प्रहृष्टमनसौ यदि।
विश्वासयन् प्रशंसाभिरिंगितैश्च पुनः पुनः।।

(वा० रा० ४।२।२५)

उनके मनोभावों को समझना और यदि वे प्रसन्नचित्त हों तो मेरी वार-वार प्रशंसा करके और मेरे अभिप्रायों को वताकर उनका मेरे प्रति विश्वास उत्पन्न करना।

ममैवाभिमुखं स्थित्वा पृच्छ त्वं हरिपुंगव।
प्रयोजनं प्रवेशस्य वनस्यास्य धनुर्धरौ।।

(वा० रा० ४।२।२६)

तुम मेरी ओर मुंह करके खड़े होना और उन धनुषधारी वीरों से इस वन में आने का कारण पूछना।

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ।

(मा० ४।२।१।२)

हनुमानजी ब्राह्मण का रूप धारण करके श्रीराम-लक्ष्मण के पास पहुँचे और उनके तेज-प्रताप से प्रभावित होकर उनके प्रति मस्तक नवा दिया।

ततश्च हनुमान् वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया।
विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च।।
आबभाषे च तौ वीरौ यथावत् प्रशशंस च।
सम्पूज्य विधिवद् वीरौ हनुमान् वानरोत्तमः।।
उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्यपराक्रमौ।
राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ।।

(वा० रा० ४।३।३, ४, ५)

तव हनुमानजी ने विनीत भाव से दोनों रघुवंशी वीरों को प्रणाम

करके मन को अत्यन्त प्रिय लगने वाले मधुर वचनों से उनके साथ वार्तालाप आरम्भ किया। वानर श्रेष्ठ हनुमानजी ने सबसे पहले उनकी यथोचित प्रशंसा की और सम्मान किया। फिर मधुर वाणी में पूछा— वीरो ! आप दोनों सत्यपराक्रमी, राजर्षियों और देवताओं जैसे प्रभावशाली तपस्वी और कठोर व्रतधारी जान पड़ते हैं।

देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ।
त्रासयन्तौ मृगगणानन्यांश्च वनचारिणः।।
पम्पातीररुहान् वृक्षान् वीक्षमाणौ समन्ततः।
इमां नदीं शुभजलां शोभयन्तौ तरस्विनौ।।

(वा० रा० ४।३।६-७)

आप दोनों के शरीर की कान्ति बड़ी सुन्दर है। आपके अंगों की कान्ति स्वर्ण जैसी शोभायमान है। वन में विचरने वाले मृग-समूहों और अन्य जीवों को भी त्रास देते हुए, पम्पा सरोवर के तटवर्ती वृक्षों को चारों ओर से देखते हुए और इस सुन्दर जल वाली नदी जैसी पम्पा को सुशोभित करते हुए आप दोनों वेगशाली वीर कौन हैं ? आप दोनों इस वन्य प्रदेश में किसलिए आए हैं ?

धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ को युवां चीरवाससौ।
निःश्वसन्तौ वरभुजौ पीडयन्ताविमाः प्रजाः।।

(वा० रा० ४।३।८)

आप दोनों बड़े धैर्यवान दिखाई देते हैं। आपके अंगों पर चीर वस्त्र शोभा पा रहा है। आप दोनों लम्बी सांस ले रहे हैं। आपकी भुजाएँ विशाल हैं। आपके प्रभाव से इस वन के प्राणी भयभीत हो रहे हैं। आप कौन हैं ?

सिंहविप्रेक्षितौ वीरौ महाबलपराक्रमौ।
शक्रचापनिभे चापे गृहीत्वा शत्रुनाशनौ।।

(वा० रा० ४।३।९)

आप दोनों वीरों की दृष्टि सिंह जैसी है। आपके बल और पराक्रम महान् हैं। इन्द्रधनुष जैसा महान् शरासन लिए हुए आप शत्रुओं

को नष्ट करने में समर्थ हैं।

श्रीमन्तौ रूपसम्पन्नौ वृषभश्रेष्ठविक्रमौ।
हस्तिहस्तोपमभुजौ द्युतिमन्तौ नरर्षभौ॥

(वा० रा० ४।३।१०)

आप कान्तिमान और रूपवान हैं। आप बड़े सांड जैसी धीमी चाल से चलते हैं। आपकी भुजाएँ हाथी की सूंड के समान हैं। आप मनुष्यों में श्रेष्ठ और परम तेजस्वी हैं।

प्रभया पर्वतेन्द्रोऽसौ युवयोरवभासितः।
राज्यार्हावमरप्रख्यौ कथं देशमिहागतौ॥

(वा० रा० ४।३।११)

आप दोनों की प्रभा से यह ऋष्यमूक पर्वत प्रकाशमान हो रहा है। आप देवताओं के समान पराक्रमी और राज्य भोगने के पात्र हैं। यह तो बताइये कि इस दुर्गम वन-प्रदेश में आपका आना कैसे संभव हुआ।

पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ।
अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिहागतौ॥

(वा० रा० ४।३।१२)

आपके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दल के समान शोभा दे रहे हैं। आप वीरता से परिपूर्ण हैं। आप दोनों के मस्तक पर जटामंडल है। आप दोनों एक-दूसरे के समान हैं। वीरो! क्या आप देवलोक से पधारे हैं?

यदृच्छयेव सम्प्राप्तौ चन्द्रसूर्यौ वसुंधराम्।
विशालवक्षसौ वीरौ मानुषौ देवरूपिणौ॥

(वा० रा० ४।३।१३)

आप ऐसे दीख रहे हैं जैसे चन्द्रमा और सूर्य स्वेच्छा से इस वसुन्धरा पर उतर आये हों। आपके वक्षःस्थल विशाल हैं। मनुष्य होते हुए भी आप देवतास्वरूप हैं।

सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ।
आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः।।
सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः।
उभौ योग्यावहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम्।।
ससागरवनां कृत्स्नां विन्ध्यमेरुविभूषिताम्।
इमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने।।
(वा० रा० ४।३।१४-१५-१६)

सिंह जैसे आपके कंधे हैं। महान् उत्साह से आप भरे हुए हैं। आप महान् शक्तिशाली प्रतीत हो रहे हैं। आपकी भुजाएँ विशाल, सुन्दर, गोल-गोल और परिधि के समान सुदृढ़ हैं। सव प्रकार के आभूषणों को धारण करने के योग्य हैं। परन्तु आपने उन्हें क्यों विभूषित नहीं किया है ? मैं समझता हूँ कि आप समुद्र और वनों से युक्त, विन्ध्य और मेरु पर्वतों से विभूषित इस पृथ्वी की रक्षा करने में सक्षम हैं। आपके दोनों धनुष विचित्र, चिकने और अद्भुत अनुलेपन से चित्रित हैं।

प्रकाशेते यथेन्द्रस्य वज्रे हेमविभूषिते।
सम्पूर्णाश्च शितैर्बाणैस्तूणाश्च शुभदर्शनाः।।
जीवितान्तकरैर्घोरैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः।
महाप्रमाणौ विपुलौ तप्तहाटकभूषणौ।।
खड्गावेतौ विराजेते निर्मुक्तभुजगाविव।
एवं मां परिभाषन्तं कस्माद् वै नाभिभाषतः।।
(वा० रा० ४।३।१७-१८-१९)

आपके ये धनुष स्वर्ण से विभूषित हैं और इन्द्र के वज्र के समान प्रकाशमान हैं। आप दोनों के तूणीर वड़े सुन्दर हैं और ऐसे चमकदार तीखे वाणों से भरे हुए हैं जो प्राणों का अंत करने वाले सर्पों के समान भयंकर हैं। आपके दोनों खंग वहुत वड़े-वड़े हैं और पक्के सोने से विभूषित हैं और ऐसे शोभा पा रहे हैं जैसे केंचुल से निकले हुए सर्प। हे वीरो ! मैं आपसे वार-वार आपका परिचय पूछ रहा हूँ। आप

मुझे उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं ?

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा।।
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी।।
मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता।।
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ।।

(मा० ४।४-५)

दो०—जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार।।

(मा० ४।१)

हे वीरो ! आप सांवले और गोरे शरीर वाले कौन हैं जो क्षत्रिय के रूप में वन में घूमते फिर रहे हैं। हे स्वामी ! यहाँ की भूमि कठोर है और आपके चरण कोमल हैं। आप इस वन में क्यों विचर रहे हैं ? आप इतने कोमल, मनोहर और सुन्दर होकर भी वन की कठिन धूप और वायु को क्यों सह रहे हैं ? क्या आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश देवों में से कोई हैं या आप दोनों साक्षात नर-नारायण हैं या आप इस जगत् को उत्पन्न करने वाले, आवागमन से पार कर देने वाले सम्पूर्ण लोकों के स्वामी हैं और पापियों को नष्ट करके पृथ्वी का बोझ दूर करने के लिए मनुष्य अवतार लिया है ?

हनुमानजी की बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी का मुख प्रसन्नता से खिल उठा।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
प्रहृष्टवदनः श्रीमान् भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम्।।

(वा० रा० ४।३।२५)

और अपने निकट खड़े हुए लक्ष्मण से बोले—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्।।

(वा० रा० ४।३।२८)

जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली या जिसने यजुर्वेद का

अभ्यास नहीं किया या जो सामवेद का विद्वान् नहीं है, वह इस प्रकार श्रेष्ठ भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता।

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥

(वा० रा० ४।३।२९)

यह निश्चित है कि इन्होंने समस्त व्याकरण का अनेक वार स्वाध्याय किया है क्योंकि बहुत सी-बातें बोल जाने पर भी इनकी भाषा में कोई अशुद्धि नहीं हुई।

न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥

(वा० रा० ४।३।३०)

सम्भाषण के समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह या किसी अन्य अंग से कोई दोष प्रकट हुआ हो, ऐसा भी नहीं हुआ।

अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्ययम्।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम्॥

(वा० रा० ४।३।३१)

इन्होंने थोड़े में ही बहुत स्पष्टता के साथ अपना अभिप्राय कह दिया जिसे समझने में कोई संदेह नहीं हुआ। इन्होंने रुक-रुक कर या शब्दों अथवा अक्षरों को तोड़-मरोड़कर किसी वाक्य का उच्चारण नहीं किया कि जो सुनने में कानों को कटु लगे। इनकी वाणी हृदय में मध्यमा रूप से स्थित है और कंठ वैखरी रूप में प्रकट होती है, अर्थात् जो सत्य इनके हृदय में है वही वचनों द्वारा मुख से निकल रहा है। बोलते समय इनका स्वर न तो बहुत धीमा रहा न बहुत ऊँचा। सब बातें इन्होंने मध्यम स्वर में ही कही हैं।

संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम्॥

(वा० रा० ४।३ ३२)

ये व्याकरण के नियमानुकूल शुद्ध वाणी के संस्कार-सम्पन्न हैं। इनका शब्द उच्चारण शास्त्रीय परिपाटी से सम्पन्न है। ये अद्भुत और बिना रुके धाराप्रवाह तथा हृदय को हर्षित करने वाली कल्याणमयी वाणी का उच्चारण करते हैं।

एवंविधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्य तु।
सिद्धयन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ।।

(वा० रा० ४।३।३४)

सुमित्रानन्दन ! जिस राजा के पास इनके समान दूत न हो उसके कार्यों की सिद्धि कैसे हो सकती है ?

एवंगुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः।
तस्य सिद्धयन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः।।

(वा० रा० ४।३।३५)

लक्ष्मण ! जिस राजा के कार्यसाधक दूत ऐसे उत्तम गुणों से युक्त हों उसके सभी मनोरथ दूतों की बातचीत से ही सिद्ध हो जाते हैं।"

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए।।
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई।।
इहां हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।।
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई।।

(मा० ४।१।१ तथा २)

तब श्रीराम ने हनुमानजी से कहा—"हम कौशलराज महाराजा दशरथ के पुत्र हैं। मेरा नाम राम है और यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। पिता का वचन मानकर हम वन में आये हैं। हमारे साथ मेरी सुन्दर सुकुमारी पत्नी जानकीजी थीं जिनका यहाँ वन में हरण हो गया है। हे विप्र ! आप अपनी कथा समझाकर कहिये।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।।
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना।।

(मा० ४।१।३)

हनुमानजी ने तुरन्त पहचान लिया कि ये तो मेरे प्रभु श्रीराम हैं और उन्होंने चरण पकड़कर साष्टांग दंडवत की। (श्रीराम कथा सुनाते हुए, शिवजी ने पार्वतीजी से कहा) हनुमानजी को जो सुख उस समय मिल रहा था, उसका वर्णन करना असंभव है। हनुमानजी का शरीर रोमांचित हो गया, मुख से वचन नहीं निकलते। वे एकटक श्रीराम की सुन्दर छवि को देखे जा रहे हैं।

पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही।।
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं।।
तव माया बस फिरऊँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना।।

(मा० ४।१।४ तथा ५)

फिर अपने को संभाल कर हृदय में वड़ा हर्ष भरे हुए हनुमानजी स्तुति करने लगे। "हे स्वामी! मैंने आपका परिचय पूछा। मेरा आपसे परिचय पूछना तो ठीक था क्योंकि मैंने मायावश होने से आपको नहीं पहचाना। परन्तु आप सर्वज्ञ हो कर भी साधारण मनुष्य की तरह मुझसे पूछ रहे हैं।

दो०—एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान।।

(मा० ४।२)

मैं तो मंद ठहरा। मोह के वश हूँ, अज्ञानी हूँ, हृदय का कुटिल हूँ, परन्तु हे दीनवन्धु भगवान! आपने मुझे कैसे भुला दिया?

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें।।
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।।
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानऊँ नहिं कछु भजन उपाई।।
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।।

(मा० ४।२।१ तथा २)

हे नाथ! भले ही मुझमें वहुत अवगुण हैं किन्तु ऐसा होने पर भी स्वामी तो कभी अपने सेवक को नहीं भुलाया करते। हे नाथ! जीव तो सदा आपकी माया के फेर में पड़ा भटकता फिरता है। आपकी

कृपा से ही उसे छुटकारा मिल सकता है। हे राघवेन्द्र ! मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं न तो भजन जानता हूँ, न साधन। मेरा तो इतना ही दृढ़ विश्वास है कि सेवक स्वामी के भरोसे और पुत्र माता के भरोसे निश्चिंत रहता है। इसलिए प्रभु को सेवक का पालन-पोषण करना ही पड़ता है।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

(मा० ४।२।३)

ऐसा कहते हुए हनुमानजी अकुलाकर श्रीराम के चरणों पर गिर पड़े और उनका हृदय प्रेम से उमड़ पड़ा और अपना वानरी शरीर प्रकट कर दिया। तव श्रीराम ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और नेत्रों के जल से सींच-सींचकर उन्हें प्रसन्न किया।

सुनु कपि जियं मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥

(मा० ४।२।४)

और वोले—"सुनो हनुमान ! तुम अपने मन को छोटा न करो। तुम तो मुझे लक्ष्मण से भी अधिक प्यारे हो। सव कोई मुझे समदर्शी जानता है परन्तु मुझे तो भक्त अधिक प्रिय है क्योंकि *भक्त की गति अनन्य होती है। उसको मैं ही प्रिय होता हूँ, दूसरा नहीं।*

दो०—सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक, सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(मा० ४।३)

हे हनुमान ! *अनन्य वही है जिसका सदा यह निश्चित विश्वास रहता है कि यह सारा जड़-चेतन जगत मेरे स्वामी भगवान का रूप है और मैं उनका ही सेवक हूँ।*

हनुमानजी ने इस मंत्र को अपना परम उद्देश्य वना लिया। श्रीराम को प्रसन्न देखकर पवनसुत हनुमानजी के हृदय में हर्ष छा गया और उनकी सब चिंता, संदेह समाप्त हो गये।

मित्रता

श्रीराम और लक्ष्मण को पीठ पर बैठा कर हनुमानजी दोनों वीरों को सुग्रीव के पास ले आये। हनुमानजी ने श्रीराम और सुग्रीव का परस्पर परिचय कराया और सुग्रीव की कथा विस्तार से सुनाई। लक्ष्मण ने श्रीराम का चरित कहा। सुग्रीव वोले—

भवान् धर्मावनीतश्च सुतपाः सर्ववत्सलः।
आख्याता वायुपुत्रेण तत्वतो मे भवद्गुणाः॥

(वा० रा० ४।५।६)

प्रभो ! आप धर्म और नीति में प्रवीण, परम तपस्वी हैं, सब पर दया करने वाले हैं। पवनकुमार ने मुझसे आपके यथार्थ गुणों का वर्णन किया है।

रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा॥

(वा० रा० ४।५।११)

यदि मेरी मैत्री आपको पसंद हो तो मेरा यह हाथ फैला हुआ है। आप इसे अपने हाथ में ले लें और परस्पर मैत्री का संबंध अटूट हो जाये, ऐसी स्थिर मर्यादा बांध दें।"

एतत् तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम्।
सम्प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना॥
हृष्ट सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम्।

(वा० रा० ४।५।१२ तथा १२)

सुग्रीव के ऐसे मधुर वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र प्रसन्न हो गये

और उन्होंने अपने करकमलों से सुग्रीव का हाथ पकड़ कर दवाया और सौहार्द का आश्रय ले वड़े हर्ष के साथ चिन्ता पीड़ित सुग्रीव को छाती से लगा लिया।

दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पैरभ्यर्च्य सत्कृतम् ।।
तयोर्मध्ये तु सुप्रीतो निदधौ सुसमाहितः।

(वा० रा० ४।५।१४)

हनुमानजी ने दो लकड़ियों को रगड़ कर अग्नि उत्पन्न की और पुष्पों द्वारा अग्नि-देव का सादर पूजन किया। एकाग्रचित्त होकर श्रीराम और सुग्रीव के वीच में साक्षी के रूप में अग्नि को प्रसन्नतापूर्वक स्थापित कर दिया।

ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम् ।।
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ। (वा० रा० ४।५।१५)

तव सुग्रीव और श्रीराम ने उस प्रज्वलित अग्नि की प्रदक्षिणा की और एक-दूसरे के मित्र वन गये। सुग्रीव ने कहा—"हे नाथ! मिथिलेशकुमारी आपको मिल जायेंगी। मैं एक वार यहाँ मंत्रियों के साथ बैठा हुआ विचार-विमर्श कर रहा था।

कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी ।।
मंत्रिन्ह सहित इहां एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा ।।
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता ।।

(मा० ४।४।१ तथा २)

अनुमानात् तु जानामि मैथिली सा न संशयः।
ह्रियमाणा मया द्रष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा ।।
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम्।
स्फुरन्ती रावणस्यांके पन्नगेन्द्रवधूर्यथा ।।

(वा० रा० ४।६।९ तथा १०)

मैंने देखा कि भयंकर कोई राक्षस किसी स्त्री को आकाश मार्ग से ले जा रहा है। अनुमान से मैं समझता हूँ कि वे मिथिलेशकुमारी सीताजी ही होंगी। इसमें संशय नहीं क्योंकि वे नागिन की भांति

छटपटाती हुई प्रकाशमान हो रही थीं और 'हा राम ! हा राम ! हा लक्ष्मण !' पुकारती हुई रो रही थीं ।

आत्मना पंचमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम् ।

उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च ।।(वा०रा० ४।६।११)

देवी सीता ने हमें देखकर अपनी चादर और कई सुन्दर आभूषण ऊपर से गिराये ।

राम राम हा राम पुकारी । हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी ।

(मा० ४।४।३)

हे रघुवीर ! आप सोच छोड़ दें और मन में धीरज लायें । मैं सव प्रकार आपकी सेवा करूँगा जिस उपाय से जानकीजी आपको मिल जायें ।

सुग्रीव ने अपनी वर्तमान परिस्थितियों का निरूपण किया— वालि ने मेरी पत्नी मुझसे छीन ली, मुझे घर से निकाल दिया, मेरे साथ बैर वाँध लिया । उसी के त्रास और भय से आतंकित होकर मैं इस वन में रह रहा हूँ । आप मुझ सेवक को अभयदान दीजिये ।

श्रीराम ने कहा—हे सुग्रीव ! मैं एक ही वाण से वालि को मार डालूँगा । फिर श्रीराम ने मित्र की परिभाषा का इस प्रकार निरूपण किया—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ।।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ।।

(मा० ४।६।१)

जो मित्र के दुःख से दुखी न हो, उसे देखने में भी बड़ा पाप लगता है । मित्र वह है जो अपने पर्वत समान भारी दुःख को धूल के समान साधारण जाने और मित्र के धूल के समान दुःख को पर्वत के समान जाने । जिनकी स्वाभाविक ऐसी बुद्धि नहीं है वे मूर्ख क्यों हठ कर किसी से मित्रता करें ?

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ।।
देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ।।

विपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ।।

(मा० ४।६।२ तथा ३)

मित्र का धर्म तो यह है कि बुरे मार्ग से रोक कर अपने मित्र को अच्छे मार्ग पर चलाये अर्थात् एकांत में उसे सत्परामर्श देकर उसके दोष बतावे। जब कुपथ का निवारण होता है तब मनुष्य सुपथ में चलता है और दूसरों के सामने अपने मित्र के गुण ही प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे। देने-लेने में मन में शंका न रखे, अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसका सदा हित ही करता रहे और यदि मित्र पर कभी कोई विपत्ति आ जाये तो सुख के समय की अपेक्षा सौ-गुणा स्नेह करे। ये लक्षण श्रेष्ठ मित्र के हैं और वेद साक्षी हैं।

आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई ।।
जा कर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेंहि भलाई ।।

(मा० ४।६।४)

इसके विपरीत, जो सामने मुख पर तो कोमल, मीठे वचन बनाकर कहता है और पीठ पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है और जिसका मन सर्प की चाल के समान टेढ़ा है, हे सुग्रीव भाई! ऐसे कुमित्र को तो त्याग देने में ही भलाई है।

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी ।।
सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब विधि घटव काज मैं तोरें ।।

(मा० ४।६।५)

मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुटिला स्त्री और कपटी मित्र, ये चारों शूल के समान पीड़ा देने वाले होते हैं जो ऊपर से भले वने रहते हैं परन्तु भीतर-भीतर पीड़ा देते हैं। हे सखा! अव तुम मेरे भरोसे चिन्ता छोड़ दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारे काम सँवारूँगा।

हनुमानजी यह संवाद सुनकर वहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इसे अपने चित्त में वसा लिया।

सत्परामर्श

उधर सुग्रीव ने कहा कि मैं आपकी सब प्रकार सेवा करूँगा जिससे जानकीजी मिल जायें। इधर श्रीराम ने सुग्रीव को वालि की ओर से निश्चिन्त कर दिया। सुग्रीव ने वालि को ललकारा। दोनों में युद्ध हुआ। श्रीराम ने वालि को मार दिया। सुग्रीव को उनकी पत्नी वापस मिल गई। वह भोग-विलास में भूल गये। इस पर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि तुम मेरी आज्ञा से किष्किन्धापुरी जाओ और विषय-भोग में फँसे हुए वानरराज सुग्रीव से मेरा यह संदेश कहना।

अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम्।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः॥

(वा० रा० ४।३०।७१)

जो बल-पराक्रम से सम्पन्न तथा पहले ही उपकार करने वाले कार्यार्थी पुरुषों को प्रतिज्ञापूर्वक आशा देकर पीछे उसे तोड़ देता है, वह संसार के सभी पुरुषों में नीच है।

शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम्।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः॥

(वा० रा० ४।३०।७२)

जो अपने मुख से प्रतिज्ञा के रूप में निकले हुए सभी तरह के वचनों को अवश्य पालनीय समझकर सत्य की रक्षा के उद्देश्य से उनका पालन करता है, वह वीर समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ माना जाता है।

कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान् नोपभुंजते ।।

(वा० रा० ४।३०।७३)

जो अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर, जिनके कार्य नहीं पूरे हुए हैं, उन मित्रों के सहायक नहीं होते—उनके कार्य को सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करते, उन कृतघ्न पुरुषों के मरने पर मांसाहारी जन्तु भी उनका मांस नहीं खाते हैं।

उधर हनुमानजी शास्त्र के निश्चित सिद्धांतों के ज्ञाता थे। उन्हें यथार्थ ज्ञान था कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। तथा किस समय किस विशेष धर्म का पालन करना चाहिए। वे वातचीत करने की कला में निपुण थे। उन्होंने देखा कि वर्षा ऋतु समाप्त हो गई है—

समीक्ष्य विमलं व्योम गतविद्युद्वलाहकम्।
सारसाकुलसंघुष्टं रम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ।।

(वा० रा० ४।२६।१)

आकाश निर्मल है, विजली नहीं चमकती, न बादल ही दिखाई देते हैं। अंतरिक्ष में सारस उड़ने लगे हैं और उनकी बोली सुनाई देती है। आकाश ऐसा दीखता है जैसे उस पर श्वेत चन्दन के समान रमणीय चाँदनी का लेप चढ़ा हो।

समृद्धार्थं च सुग्रीवं मन्दधर्मार्थसंग्रहम्।
अत्यर्थं चासतां मार्गमेकान्तगतमानसम् ।।
निवृत्तकार्यं सिद्धार्थं प्रमदाभिरतं सदा।
प्राप्तवन्तमभिप्रेतान् सर्वानेव मनोरथान् ।।

(वा० रा० ४।२६।२ तथा ३)

सुग्रीव का प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर वे धर्म और अर्थ के संग्रह में अव शिथिलता दिखाने लगे हैं और काम के वश असाधु पुरुषों के मार्ग का अधिक आश्रय ले रहे हैं इसलिए एकांत में ही उनका मन लगता है। उनका काम पूरा हो चुका है, उनके अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि हो चुकी है। अव वे हर समय युवती स्त्रियों के

साथ क्रीड़ा-विलास में ही लगे रहते हैं। उन्होंने अपने अभिलषित मनोरथों को पा लिया है।

क्रीडन्तमिव देवेशं गन्धर्वाप्सरसां गणैः।
मन्त्रिषु न्यस्तकार्यं च मन्त्रिणामनवेक्षकम्।।
उच्छिन्नराज्यसंदेहं कामवृत्तमिव स्थितम्।
निश्चितार्थोऽर्थतत्त्वज्ञः कालधर्मविशेषवित्।।

(वा० रा० ४।२९।५ तथा ६)

जैसे देवराज इन्द्र गन्धर्वों और अप्सराओं के साथ क्रीड़ा में लगे रहते हैं उस प्रकार सुग्रीव भी अपने मंत्रियों पर राजकार्य का भार रखकर क्रीड़ा-विहार में तत्पर हैं। मंत्रियों की देखभाल कभी नहीं करते। यह ठीक है कि मंत्रियों के कारण राज्य को हानि होने का भय नहीं है फिर भी सुग्रीव स्वयं ही स्वेच्छाचारी हो गए हैं।

प्रसाद्य वाक्यैर्विविधैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः।
वाक्यविद् वाक्यतत्त्वज्ञं हरीशं मारुतात्मजः।।
हितं तथ्यं च पथ्यं च सामधर्मार्थनीतिमत्।
प्रणयप्रीतिसंयुक्तं विश्वासकृतनिश्चयम्।।
हरीश्वरमुपागम्य हनुमान् वाक्यमब्रवीत्।

(वा० रा० ४।२९।७ तथा ८½)

यह सब सोचकर हनुमानजी सुग्रीव के पास गये और उन्हें युक्ति-युक्त एवं मीठे वचनों के द्वारा प्रसन्न करके उनसे सत्य, हितकर, लाभदायक, साम, धर्म और अर्थ-नीति से युक्त तथा शास्त्र-विश्वासी पुरुषों जैसे सुदृढ़ निश्चयी, प्रेम और प्रसन्नता से भरे हुए वचन बोले—

यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते।।
तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चापि वर्धते।

(वा० रा० ४।२९।१०½)

जो राजा यह बात जानकर कि कब प्रत्युपकार करना चाहिए, मित्रों के प्रति सदा साधुतापूर्ण व्यवहार करता है उसके राज्य में यश और प्रताप की वृद्धि होती रहती है।

यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप ।
समान्येतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते ।।

(वा० रा० ४।२६।११)

जिस राजा के कोष, सेना, मित्र और अपना शरीर ये सब समान रूप से वश में रहते हैं वह बड़े विशाल राज्य का पालन और उपभोग करता है।

संत्यज्य सर्वकर्माणि मित्रार्थे यो न वर्तते ।
सम्भ्रमाद् विकृतोत्साहः सोऽनर्थेनावरुध्यते ।।

(वा० रा० ४।२६।१३)

जो अपने सब कार्यों को छोड़कर मित्र का कार्य सिद्ध करने के लिए विशेष उत्साहपूर्वक शीघ्रता से नहीं लग जाता, वह अनर्थ का भागी होता है।

यो हि कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते ।
स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते ।।

(वा० रा० ४।२६।१४)

कार्यसाधन का उपयुक्त अवसर बीत गया और तब मित्र के कार्य में लगा तो बड़े-बड़े कार्य करने पर भी यह नहीं माना जाता कि उसने मित्र के प्रयोजन को सिद्ध किया।

कुलस्य हेतुः स्फीतस्य दीर्घबन्धुश्च राघवः ।
अप्रमेयप्रभावश्च स्वयं चाप्रतिमो गुणैः ।।
तस्य त्वं कुरु वै कार्यं पूर्वं तेन कृतं तव ।
हरीश्वर कपिश्रेष्ठानाज्ञापायितुमर्हसि ।।

(वा० रा० ४।२६।१७ तथा १८)

हे कपिराज ! भगवान श्रीराम चिरकाल तक मित्रता निभाने वाले हैं। वे आपके समृद्धिशाली कुल के उत्थान के हेतु हैं। उनका प्रभाव अनुपम है। उनके समान किसी में गुण नहीं हैं। अब आप उनका कार्य सिद्ध कीजिये। वे पहले ही आपका कार्य सिद्ध कर चुके हैं। आप प्रधान वानरों को इस कार्य के लिए आज्ञा दीजिये।

सत्यतद् वचनं श्रुत्वा काले साधु निरूपितम्।
सुग्रीवः सत्वसम्पन्नश्चकार मतिमुत्तमाम्।।
(वा० रा० ४।२९।२८)

सुग्रीव सत्गुणी थे। उन्होंने ठीक समय पर हनुमानजी के सत्परामर्श को सुनकर श्रीराम के कार्य को सिद्ध करने के लिए अति उत्तम निश्चय किया।

इहां पवनसुत हृदयं बिचारा। राम काजु सुग्रीव बिसारा।।
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।।

सुनि सुग्रीव परम भय माना। बिषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना।।
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहं तहं बानर जूहा।।

कहहु पाख महुं आव न जोई। मोरें कर ता कर बध होई।।
तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता।।

भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिर नाई।।
(मा० ४।१८।१ से ३½)

इसी समय लक्ष्मण नगर में आ गये। उनका क्रोध देखकर वानर जहाँ-तहाँ भागने लगे। लक्ष्मण ने क्रोध का प्रदर्शन करके कहा कि मैं अभी नगर को जला दूँगा। अंगद ने क्षमा-याचना की। सुग्रीव ने हनुमानजी को भेजा कि राजकुमार को समझा-बुझाकर शांत करें। तव हनुमानजी ने लक्ष्मणजी के चरणों की वंदना की और श्रीराम के सुन्दर यश का वर्णन किया। तव उन्हें सुग्रीव के महल में ले आये।

करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलंग बैठाए।।
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा।।
नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं।।
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहुबिधि समुझावा।।
पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई।।

दो०—हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगें करि आए जहं रघुनाथ॥

(मा० ४।१६।३ से ५ और ४।२०)

वानरराज सुग्रीव ने उनके चरणों में प्रणाम किया तो लक्ष्मण ने उनका हाथ पकड़कर गले से लगा लिया। सुग्रीव ने क्षमा-याचना की कि विषय के समान कोई मद नहीं है। यह मुनियों के मन को भी क्षण-मात्र में मोह लेता है। लक्ष्मण को संतोष हुआ और उन्होंने सुग्रीव को समझाया। हनुमानजी ने लक्ष्मणजी को बताया कि सब दिशाओं में दूत भेजे गये हैं। तब सुग्रीव ने अपने साथ अंगद आदि वानरों को लिया और लक्ष्मण के पीछे-पीछे उस स्थान पर आ गये जहाँ श्रीरघुनाथजी थे।

कर्तव्य-बोध

श्रीराम के समक्ष सुग्रीव ने हनुमानजी से कहा—

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये।
नाप्सु वा गतिसंगं ते पश्यामि हरिपुंगव ।।

(वा० रा० ४।४४।३)

हे वानरश्रेष्ठ ! पृथ्वी, आकाश, अंतरिक्ष, देवलोक अथवा जल में भी आपकी गति का कहीं अवरोध नहीं है।

सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः।
विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ।।

(वा० रा० ४।४४।४)

असुर, गंधर्व, नाग, मनुष्य, देवता, समुद्र और पर्वतों सहित सब लोकों का आपको ज्ञान है।

त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धि पराक्रमः।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डितः ।।

(वा० रा० ४।४४।७)

हनुमान् ! तुम नीतिशास्त्र के ज्ञाता हो। बल, बुद्धि, पराक्रम देश-काल का अनुसरण और नीतिपूर्व वर्ताव, इन सब विशेष गुणों से सम्पन्न हो।

तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते।
तद् यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ।।

(वा० रा० ४।४४।६)

इस पृथ्वी पर आपके तेज की समानता करने वाला कोई भी

नहीं है। जिस प्रकार सीताजी मिल जायें, आप वैसा ही उपाय करें।

ततः कार्यसमासंगमवगम्य हनुमति।
विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः॥

(वा० रा० ४।४४।८)

सुग्रीव की वात सुनकर श्री रामचन्द्र ने समझ लिया कि मेरे कार्य को पूर्ण करने का भार हनुमानजी पर है और उन्होंने स्वयं भी यह अनुभव किया कि हनुमानजी इस कार्य को सफल करने में समर्थ हैं। श्रीराम मन ही मन विचार करने लगे।

सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनुमति हरीश्वरः।
निश्चितार्थतरश्चापि हनुमान् कार्यसाधने॥

(वा० रा० ४।४४।९)

सुग्रीव सर्वथा हनुमानजी पर भरोसा किये हुए हैं कि ये निश्चित रूप से हमारा कार्य-सिद्ध करेंगे और स्वयं हनुमानजी को भी अत्यन्त निश्चित रूप से इस कार्य को सिद्ध करने का आत्म-विश्वास है।

तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम्।
कृतार्थ इव संहृष्टः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः॥

(वा० रा० ४।४४।११)

ऐसा विचार कर परमतेजस्वी श्रीराम कार्यसाधन के उद्योग में सर्वश्रेष्ठ हनुमानजी की ओर देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनका मन अपार हर्ष से खिल उठा।

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामांकोपशोभितम्।
अंगुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः॥

(वा० रा० ४।४४।१२)

तब शत्रुओं को संताप देने वाले श्रीराम ने प्रसन्नतापूर्वक अपने नाम से सुशोभित अंगूठी हनुमानजी के हाथ में दी जिससे सीताजी को परिचय मिल जाये और कहा—

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति॥

(वा० रा० ४।४४।१३)

वानरश्रेष्ठ ! इस चिह्न के द्वारा जनकनन्दिनी सीता को यह विश्वास हो जायेगा कि तुम मेरे पास से गये हो और वह भयरहित होकर तुम्हारी ओर देख सकेंगी।

व्यवसायश्च ते वीर सत्वयुक्तश्च विक्रमः।
सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे।।

(वा० रा० ४।४४।१४)

हे वीर ! तुम्हारा पराक्रम, धैर्य और सुग्रीवजी का संदेश, यह सब मुझे इस बात का विश्वास दिला रहा है कि तुम्हारे द्वारा अवश्य कार्य की सिद्धि होगी।

गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत्।
अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यंगुलीयकमुत्तमम्।।
मन्नामाक्षरसंयुक्तं सीतायै दीयतां रहः।
अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम।।
जानामि सत्वं ते गच्छ पन्थाः शुभस्तव।।

(आ० रा० ४।६।२८-२९)

हे कपिश्रेष्ठ ! तुम अपने परिचय के लिए एकांत में मेरी यह अत्युत्तम अंगूठी सीताजी को देना। इस पर मेरे नामाक्षर गुदे हुए हैं। कपिश्रेष्ठ ! इस कार्य में तुम समर्थ हो। मैं तुम्हारा बुद्धिबल अच्छी तरह जानता हूँ। अच्छा, तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो।

स तद् गृह्य हरिश्रेष्ठः कृत्वा मूर्ध्नि कृतांजलिः।
वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगर्षभः।।

(वा० रा० ४।४४।१५)

कपिश्रेष्ठ हनुमानजी ने वह अंगूठी लेकर अपने मस्तक पर रखी और श्रीराम के चरणों में हाथ जोड़कर प्रणाम करके वहाँ से प्रस्थित हुए।

अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः।
पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व।।

(वा० रा० ४।४४।१७)

चलते-चलते हनुमानजी से श्रीराम ने कहा—हे अत्यन्त वलशाली, वानरशिरोमणि ! मुझे तुम्हारी वल-बुद्धि पर विश्वास है। जैसे भी सीताजी प्राप्त हो सकें, तुम अपने महान पराक्रम से वैसा ही प्रयत्न करो।

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु।।
हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदयं धरि कृपानिधाना।।

(मा० ४।२२।५-६)

आत्म-बल

अंगद और जामवन्त के साथ वानर सेना सीताजी की खोज में चलते-चलते गृद्धराज सम्पाती के पास पहुँची। निशाकर मुनि के वरदान से गृद्धराज सम्पाती के पुनः पंख निकल आये और उन्होंने वानरसेना से कहा—

सर्वथा क्रियतां यत्नः सीतामधिगमिष्यथ ॥१२॥
पक्षलाभो ममायं वः सिद्धिप्रत्ययकारकः ॥

(वा० रा० ४।६३।१२½)

वानरो! तुम सब प्रकार से यत्न करना। यह निश्चय है कि तुम्हें सीताजी का दर्शन मिलेगा। मेरे पंखों का पुनः निकलना इस बात का विश्वास दिला रहा है कि तुम लोगों का कार्य सिद्ध होगा।

दो०—मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥
जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर॥
अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ। तिन्ह कें मन अति बिसमय भयऊ॥

(वा० रा० ४।२८।½ तथा २½)

सम्पातीजी ने कहा कि "त्रिकूट पर्वत पर लंका वसी हुई है जो रावण के अधीन है। वहाँ अशोक नाम के उपवन में सीताजी रहती हैं और इस समय सोच में बैठी हैं। मैं उन्हें देख रहा हूँ परन्तु आप लोग नहीं देख सकते। अव मैं बूढ़ा हो गया हूँ नहीं तो आपकी कुछ सहायता अवश्य करता और यह भी कहा कि श्रीरामजी का कार्य

वही कर सकेगा जिसमें सौ योजन[1] समुद्र लाँघने की क्षमता होगी और बुद्धिनिधान होगा।" ऐसा कहकर गृद्धराज तो वहाँ से चले गये।

समुद्र की विशालता देखकर वानरसेना विषाद में पड़ गई। अंगद ने उन्हें आश्वासन दिया और पृथक-पृथक समुद्र लाँघने के लिए उनकी शक्ति और साहस के बारे में पूछा। वानर-वीरों ने बारी-बारी से अपनी-अपनी गमन-शक्ति का वर्णन किया। किसीने कहा मैं १० योजन की छलाँग मार सकता हूँ, किसीने कहा २० योजन। शरभ ने कहा ३० योजन, ऋषभ ने कहा ४०, गन्धमाद ने कहा ५०, मैन्द ने कहा ६० योजन एक छलाँग में कूद जाने का उत्साह रखता हूँ। द्विविद बोले ७० योजन चला जाऊँगा। महातेजस्वी सुषेण बोले ८० योजन तक जाने की प्रतिज्ञा करता हूँ। जामवन्त ने कहा, युवावस्था में मेरे अंदर भी दूर तक छलाँग मारने की शक्ति थी परंतु अब नहीं रही। फिर भी वानरराज सुग्रीव तथा श्रीरामचन्द्र जो दृढ़ निश्चय कर चुके हैं उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। निःसंदेह ९० योजन तक मैं चला जाऊँगा। पहले तो मुझमें इतनी शक्ति थी कि जब राजा बलि के यज्ञ में सर्वव्यापी भगवान् विष्णु तीन पग भूमि नापने के लिए अपने पैर बढ़ा रहे थे तब मैंने उनके उस विराट् स्वरूप की परिक्रमा थोड़े समय में ही कर ली थी। अब तो बूढ़ा हो गया हूँ।

तांश्च सर्वान् हरिश्रेष्ठजाम्बवानिदमब्रवीत्।
न खल्वेतावदेवासीद् गमने मे पराक्रमः।।
मया वैरोचने यज्ञे प्रभविष्णुः सनातनः।
प्रदक्षिणीकृतः पूर्वं क्रममाणस्त्रिविक्रमम्।।
स इदानीमहं वृद्धः प्लवने मन्दविक्रमः।
यौवने च तदासीन्मे बलमप्रतिमं परम्।।

(वा० रा० ४।६५।१४-१५-१६)

दो०—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाई।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाई।।

(मा० ४।२९)

इसके उपरांत बुद्धिमान महाकपि अंगद बोले कि मैं इस महासागर के सौ योजन की विशाल दूरी को लाँघ कर पार तो चला जाऊँगा किन्तु उधर से लौटने में मेरी ऐसी ही शक्ति रहेगी या नहीं, इसके लिए हृदय में कुछ संदेह है।

अहमेतद् गमिष्यामि योजनानां शतं महत्।
निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्न वेति न निश्चितम्॥

(वा रा० ४।६५।१९)

इस पर चतुर जामवन्त ने, जो वातचीत करने की कला में चतुर हैं, कपिश्रेष्ठ अंगदजी से कहा—

कामं शतसहस्रं वा नह्येष विधिरुच्यते।
योजनानां भवांशक्तो गन्तुं प्रतिनिर्वर्तितुम्॥

(वा० रा० ४।६५।२१)

भले ही आपमें एक लाख योजन तक जाने की क्षमता हो, परंतु आप सबके नेता हैं। आपको भेजना हमारे लिए उचित नहीं है।

जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक॥

(मा० ४।२९।१)

इस पर अंगद ने उत्तर दिया कि अन्य कोई श्रेष्ठ वानर जाने को तैयार न होगा और यदि मैं भी नहीं जाऊँगा तो हम लोगों को निश्चित रूप से मरणान्त उपवास ही करना होगा। अन्यथा, किष्किन्धा लौटने पर वानराज सुग्रीव हम सबको मार देंगे।

यदि नाहं गमिष्यामि नान्यो वानरपुंगवः।
पुनः खल्विदमस्माभिः कार्यं प्रायोपवेशनम्॥

(वा० रा० ४।६५।२९)

तब वानरशिरोमणि जामवन्त ने अंगद से कहा—

तस्य ते वीर कार्यस्य न किंचित् परिहास्यते।
एष संचोदयाम्येनं यः कार्यं साधयिष्यति॥

(वा० रा० ४।६५।३४)

वीर ! आप चिन्ता न करें। कार्य में त्रुटि नहीं आने पायेगी। क्योंकि अब मैं ऐसे वीर को प्रेरित कर रहा हूँ जो इस कार्य को सिद्ध कर सकेगा।

ततः प्रतीतं प्लवतां वरिष्ठमेकान्तमाश्रित्य सुखोपविष्टम्।
संचोदयामास हरिप्रवीरो हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव ॥

(वा० रा० ४।६५।३५)

यह कहते हुए यूथपति जामवन्त ने वानरसेना के श्रेष्ठ वीर हनुमानजी को प्रेरित किया जो एकांत में जाकर निश्चित बैठ गये थे। जामवन्त ने हनुमानजी से कहा—

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन् किं न जल्पसि ॥

(वा० रा० ४।६६।१)

वानरलोक के महावीर, सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ हनुमानजी ! आप एकांत में जाकर चुपचाप क्यों बैठे हैं ?

बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुंगव।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे ॥

(वा० रा० ४।६६।७)

वानरशिरोमणि ! आपका बल, बुद्धि, तेज और धैर्य सब प्राणियों से बढ़कर है। फिर आप समुद्र लाँघने के लिए स्वयं को तैयार क्यों नहीं करते ?

अभ्युत्थितं ततः सूर्यं बालो दृष्ट्वा महावने।
फलं चेति जिघृक्षुस्त्वमुत्प्लुत्याभ्युत्पतोऽदिवम् ॥

(वा० रा० ४।६६।२)

शतानि त्रीणि गत्वाथ योजनानां कहाकपे।
तेजसा तस्य निर्धूतो न विषादं गवस्ततः ॥

(वा० रा० ४।६६।२२)

बाल्यावस्था में ही आपने एक दिन उदित हुए सूर्य को देखकर यह समझा कि कोई फल है और उसे लेने के लिए आप सहसा

आकाश में उछल पड़े थे और तीन-सौ योजन ऊँचे जाने के वाद सूर्य के तेज से अक्रांत होने पर भी आपके मन में न तो खेद हुआ और न चिन्ता।

त्वामप्युपगतं तूर्णमन्तरिक्षं महाकपे।
क्षिप्तमिन्द्रेण ते वज्रं कोपाविष्टेन तेजसा॥
तदा शैलाग्रशिखरे वामो हनुरभज्यत।
ततो हि नामधेयं ते हनुमानिति कीर्तितम्॥

(वा० रा० ४।६६।२३-२४)

अंतरिक्ष में पहुँचकर आप तुरंत ही सूर्य के पास पहुँच गये। तव इन्द्र ने कुपित होकर तेज से प्रकाशित वज्र का प्रहार किया जिससे आपकी ठोड़ी (हनु) का वायाँ भाग वज्र की चोट से खंडित हो गया और इसीलिए आपका नाम हनुमान पड़ गया। इसके वाद

प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ।
अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रम॥

(वा० रा० ४।६६।२७)

ब्रह्माजी ने आपके लिए यह वर दिया कि आप समर के आंगण में किसी अस्त्र या शस्त्र से मारे नहीं जा सकेंगे।

वज्रस्य च निपातेन विरुजं त्वां समीक्ष्य च।
सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम्॥
स्वच्छन्दतश्च मरणं तव स्यादिति वै प्रभो।

(वा० रा० ४।६६।२८)

वज्र प्रहार से भी पीड़ित न होने पर इन्द्र के मन में वड़ी प्रसन्नता हुई। और उन्होंने यह वर दिया कि मृत्यु आपकी इच्छा के अधीन रहेगी। आप जव चाहेंगे तभी शरीर का अंत होगा अन्यथा नहीं।

तद् विजृम्भस्व विक्रान्त प्लवतामुत्तमो ह्यसि।
त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामा हि सर्वा वानरवाहिनी॥

(वा० रा० ४।६६।३५)

"महापराक्रमी वीर ! आप अपने असीम वल का विस्तार करो। छलाँग लगाने वालों में आप सर्वश्रेष्ठ हैं।

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लंघयस्व महार्णवम्।
परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव ॥

(वा० रा० ४।६६।३६)

वानरश्रेष्ठ ! उठो और इस महासागर को लाँघ जाओ क्योंकि आपकी गति सभी प्राणियों से वढ़कर है।

विषण्णा हरयः सर्वे हनुमन् किमुपेक्षसे।
विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन् विक्रमानिव ॥

(वा० रा० ४।६६।३७)

हनुमान ! इस समय सभी वानर चिन्ता में पड़े हुए हैं। आप क्यों इनकी उपेक्षा कर रहे हैं ! महान वेगशाली वीर ! भगवान विष्णु ने त्रिलोकी को नापने के लिए तीन पग वढ़ाये थे, उसी प्रकार आप भी अपने पैर वढ़ाइये।

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना ॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बतकारा ॥

(मा० ४।२९।२ तथा ३)

आप बुद्धि, विवेक और विज्ञान के निधान हैं। संसार में ऐसा कोई कठिन काम नहीं है जो आपसे नहीं हो सकता। आपका अवतार श्रीरामचन्द्रजी के कार्य के लिए ही तो हुआ है।

ततः कपीनामृषभेण चोदितः प्रतीतवेगः पवनात्मजः कपिः।
प्रहर्षयंस्तां हरिवीरवाहिनीं चकार रूपं महदात्मनस्तदा ॥

(वा० रा० ४।६६।३८)

इस प्रकार भालुओं में श्रेष्ठ जामवन्त की प्रेरणा पाकर वानर-श्रेष्ठ हनुमानजी को अपने महान वेग पर विश्वास हो गया और उन्होंने उस वानरवीरों की सेना का उल्लास वढ़ाते हुए उस समय

अपना विराट रूप प्रकट किया ।

हरिणामुत्थितो मध्यात् सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
अभिवाद्य हरीन् विद्वान् हनूमानिदमब्रवीत् ।।

(वा० रा० ४।६७।८)

हनुमानजी उठकर खड़े हो गये । उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाँच हो आया । उन्होंने अपने से वड़े-बूढ़े वानरों को प्रणाम करके कहा—

उत्सहेयं हि विस्तीर्णमालिखन्तमिवाम्बरम् ।
मेरुं गिरिमसंगेन परिगन्तुं सहस्रशः ।।

(वा० रा० ४।६७।११)

मेरुगिरि जो कई हजार योजनों तक फैला हुआ है और आकाश के एक वड़े भाग को ढके हुए है और उसमें रेखा खींचता-सा जान पड़ता है, मैं उसकी विना विश्राम लिये ही हजारों वार परिक्रमा कर सकता हूँ ।

ममोरुजंघावेगेन भविष्यति समुत्थितः ।
समुत्थितमहाग्राहः समुद्रो वरुणालयः ।।
पन्नगाशनमाकाशे पतन्तं पक्षिसेवितम् ।
वैनतेयमहं शक्तः परिगन्तुं सहस्रशः ।।

(वा० रा० ४।६७।१३-१४)

वरुण का निवास-स्थान यह महासागर मेरी जाँघों और पिंडलियों के वेग से विक्षुब्ध हो उठेगा और उसमें रहने वाले वड़े-वड़े ग्राह ऊपर आ जायेंगे । सर्पभोजी विनतानन्दन गरुड़जी आकाश में उड़ते हों तो भी मैं हजारों वार उनके चारों ओर घूम सकता हूँ ।

उत्सहेयमतिक्रान्तुं सर्वानाकाशगोचरान् ।
सागरांशोषयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम् ।।
पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि प्लवमानः प्लवंगमः ।
हरिष्याम्युरुवेगेन प्लवमानो महार्णवम् ।।

(वा० रा० ४।६७।१७-१८)

सव ग्रह-नक्षत्र आदि को लाँघकर आगे वढ़ जाने का मुझमें

उत्साह है। यदि मैं चाहूँ तो समुद्र को सोख लूँ, पृथ्वी को विदीर्ण कर दूँ और कूद-कूदकर पर्वतों को चूर-चूर कर डालूँ। मैं दूर तक छलाँग मार सकता हूँ। अपने महावेग से समुद्र को फाँदता हुआ मैं अवश्य ही उस पार पहुँच जाऊँगा।

महामेरुप्रतीकाशं मां द्रक्ष्यध्वं प्लवंगमाः।
दिवमावृत्य गच्छन्तं ग्रसमानमिवाम्बरम्॥
विधमिश्यामि जीमूतान् कम्पयिष्यामि पर्वतान्।
सागरं शोषयिष्यामि प्लवमानः समाहितः॥

(वा० रा० ४।६७।२१-२२)

हे कपिवर! आप देखेंगे कि मैं महागिरि मेरु के समान विशाल शरीर को धारण करके स्वर्ग को ढककर और आकाश को निगलता हुआ आगे बढ़ूँगा, बादलों को छिन्न-भिन्न कर डालूँगा, पर्वतों को हिला दूँगा और एकचित्त हो छलाँग मारकर समुद्र को भी सुखा दूँगा।

बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा।
अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवंगमाः॥

(वा० रा० ४।६७।२६)

मैं बुद्धि से जैसा सोचता या देखता हूँ उसी के अनुरूप मेरे मन की चेष्टा भी होती है। यह निश्चित है कि मैं वैदेही सीताजी का दर्शन करूँगा, अतः आप लोग आनन्दित हो जाओ।

मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे।
अयुतं योजनानां तु गमिष्यामीति मे मतिः॥

(वा० रा० ४।६७।२७)

वेग में वायु के समान और गति में गरुड़ के समान मैं दस हजार योजन तक जा सकता हूँ, मेरा तो ऐसा विश्वास है।

वासवस्य सवज्रस्य ब्रह्मणो वा स्वयम्भुवः।
विक्रम्य सहसा हस्तादमृतं तदिहानये॥
लंकां वापि समुत्क्षिप्य गच्छेयमिति मे मतिः।

(वा० रा० ४।६७।२८)

वज्रधारी इन्द्र और स्वयंभु ब्रह्माजी के हाथ से भी मैं बलपूर्वक अमृत छीनकर यहाँ ला सकता हूँ। पूरी लंका को भूमि से उखाड़कर हाथ में उठाये हुए चल सकता हूँ, मुझे इसका पूरा विश्वास है।

ततश्च हरिशार्दूलस्तानुवाच बनोकसः॥
कोऽपि लोके न मे वेगं प्लवने धारयिष्यति।

(वा० रा० ४।६७।३५)

फिर वानरशिरोमणि हनुमानजी ने वनवासी वानरों से कहा—जब मैं यहाँ से छलाँग मारूँगा तब संसार में कोई भी मेरे वेग को धारण नहीं कर सकेगा।

लंघयित्वा जलनिधिं कृत्वा लंकां च भस्मसात्॥
रावणं सकुलं हत्वाऽऽनेष्ये जनकनन्दिनीम्।
यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपणिना॥
लंका सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम्।
यद्वा दृष्ट्वेव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम्॥

(अ० रा० ४।९।२२-२४)

कहो तो मैं समुद्र को लाँघकर लंका को भस्म कर दूँ और रावण को कुलसहित मारकर श्री जनकनन्दिनीजी को ले आऊँ! यदि कहो तो रावण के गले में रस्सी डालकर लंका को त्रिकूट पर्वत-सहित बायें हाथ पर उठाकर श्रीराम के आगे लाकर रख दूँ। या केवल शुभलक्षणा जानकीजी को देखकर ही श्रीराम के पास लौट आऊँ!

कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नावउँ जलनिधि खारा॥
सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहां त्रिकूट उपारी॥
जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥

(मा० ४।२९।४ तथा ५)

तब उन्होंने जामवंत से पूछा—मुझे क्या करना है? जामवंत ने कहा—

एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥

(मा० ४।२९।६)

हे तात ! आपको बस इतना ही करना है कि सीताजी को देख कर लौट आइये और उनके समाचार कहिये। उसके बाद राजीव-नयन श्रीराम अपने बाहुबल से राक्षसों का संहार करके सीताजी को ले आयेंगे, परन्तु कौतुक के लिए वानरी-सेना को साथ में ले लेंगे।

छंद—कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

(मा० ४।२९।छंद)

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि॥(वा० रा० ५।१।१)

यह सुनकर शत्रुओं का संहार करने वाले हनुमानजी ने रावण द्वारा हरी गई सीताजी के वास-स्थान की खोज करने के लिए उस आकाश मार्ग से जाने का विचार किया जिस पर देवजाति चारण विचरा करते हैं।

अंजलिं प्राङ्मुखं कुर्वन् पवनायात्मयोनये।
ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम्॥

(वा० रा० ५।१।६)

तब पूर्व की ओर मुख करके हनुमानजी ने अपने पिता पवनदेव को प्रणाम किया और कार्यकुशल पवनकुमार दक्षिण दिशा में जाने के लिए अपने शरीर को बढ़ाने लगे और उन्होंने अन्य वानरों से इस प्रकार कहा—

यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः।
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लंकां रावणपालिताम॥

(वा० रा० ५।१।३९)

जिस प्रकार श्रीराम का छोड़ा हुआ वाण वायु के वेग से चलता है उसी प्रकार मैं रावण द्वारा पालित लंका में जाऊँगा।

नहि द्रक्ष्यामि यदि तां लंकायां जनकात्मजाम्।
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम्॥

(वा० रा० ५।१।४०)

यदि लंका में श्री जनककिशोरी सीताजी नहीं मिलेंगी तो इसी वेग से मैं स्वर्ग-लोक में चला जाऊँगा।

यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः।
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम्॥

(वा० रा० ५।१।४१)

और यदि इस प्रकार परिश्रम करने पर स्वर्ग में भी मुझे सीताजी का दर्शन नहीं होगा तो राक्षसराज रावण को बाँधकर लाऊँगा।

सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सह सीतया।
आनयिष्यामि वा लंकां समुत्पाट्य सरावणाम्॥

(वा० रा० ५।१।४२)

सर्वथा कृतकृत्य होकर मैं श्रीसीताजी के साथ लौटूँगा अन्यथा रावण-सहित लंकापुरी को ही उखाड़ लाऊँगा।

पश्यन्तु वानराः सर्वे गच्छन्तं मां विहायसा।
अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिलाः॥
पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम्।
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पश्यामि राघवम्॥
प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत् स्मरन्।
नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम्॥
किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदंगांगुलिमुद्रिकः।
तमेव हृदये ध्यात्वा लंघयाम्यल्पवारिधिम्॥

(अ० रा० ५।१।२ से ६)

वानरगण! आप सब भगवान श्रीरामचन्द्र के द्वारा छोड़े हुए अमोघ बाण की भांति मुझे आकाश मार्ग से जाते हुए देखिये। आज

ही मैं श्रीराम-प्रिया जनकनन्दिनी जी का दर्शन करूँगा। निश्चय ही मैं कृतकृत्य हो चुका, कृतकृत्य हो चुका। अव मैं फिर श्री राघवेन्द्र का दर्शन करूँगा। शरीरान्त के समय जिनके नाम का एक वार स्मरण करने से ही मनुष्य अपार संसार-सागर को पार कर उनके परमधाम को चला जाता है, उन्हीं भगवान श्रीराम का दूत, उनके हाथ की मुद्रिका लिये हुए, और हृदय में उन्हीं का ध्यान करता हुआ यदि इस छोटे से समुद्र को मैं लाँघ जाऊँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या होगा ?

एवमुक्त्वा तु हनुमान् वानरो वानरोत्तमः।
उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन्॥

(वा० रा० ५।१।४३)

ऐसा कहकर वेगवान वानरश्रेष्ठ हनुमानजी ने विघ्न-बाधाओं का कोई विचार नहीं करके ऊपर की ओर बड़े वेग से छलाँग लगाई।

मारुतिः सागरं तीर्णं संसारमिव निर्ममः।

(रघुवंश १२।६०)

हनुमानजी उसी प्रकार समुद्र लाँघ गये जिस प्रकार *ममता-रहित मनुष्य संसार-सागर को पार कर लेता है।*

अथक परिश्रम

जिस समय हनुमानजी उछलकर समुद्र पार कर रहे थे उस समय इक्ष्वाकु-कुल का सम्मान करने की इच्छा से समुद्र ने अपने जल में छिपे हुए स्वर्णमय पर्वतराज मैनाक से कहा—देखो, ये पराक्रमी हनुमानजी तुम्हारे ऊपर होकर जा रहे हैं। ये वहुत महत्वपूर्ण कर्म करने वाले हैं। इस समय श्रीराम का कार्य सिद्ध करने के लिए इन्होंने आकाश में छलाँग मारी है। ये इक्ष्वाकुवंशी राम के सेवक हैं अतः मुझे इनकी सहायता करनी चाहिए। उस वंश के लोग पूजनीय हैं और तुम्हारे लिए परम पूजनीय हैं।

कुरु साचिव्यमस्माकं न नः कार्यमतिक्रमेत्।
कर्तव्यमकृतं कार्यं सतां मन्युमुदीरयेत्।।

(वा० रा० ५।१।९७)

इसलिए तुम हमारी सहायता करो जिससे हमारे कर्तव्य-कर्म का अवसर वीत न जाये। *यदि कर्तव्य का पालन नहीं किया जाये तो सत्पुरुषों में क्रोध उत्पन्न होता है।*

सलिलादूर्ध्वमुत्तिष्ठ तिष्ठत्वेष कपिस्त्वयि।
अस्माकमतिथिश्चैव पूज्यश्च प्लवतां वरः।।

(वा० रा० ५।१।९८)

इसलिए तुम पानी से ऊपर उठो जिससे छलाँग मारने वाले कपिश्रेष्ठ हनुमानजी तुम्हारे ऊपर कुछ समय ठहर कर विश्राम करें। वे हमारे पूजनीय अतिथि भी हैं।

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रम हारी॥

(मा० ५।५)

समुद्र की आज्ञा पाकर उस जल में छिपे रहने वाले विशालकाय मैनाक ने दो ही घड़ी में हनुमानजी को अपने शिखरों का दर्शन कराया। वे शिखर स्वर्णमय थे। उन परम कान्तिमान और तेजस्वी स्वर्णमय शिखरों से वह पर्वतराज मैनाक सैकड़ों सूर्यों जैसा देदीप्यमान हो रहा था।

समुत्थितमसंगेन हनुमानग्रतः स्थितम्।
मध्ये लवणतोयस्य विघ्नोऽयमिति निश्चितः॥

(वा० रा० ५।१।१०७)

खारे समुद्र के बीच में अविलम्ब उठकर सामने खड़े हुए मैनाक को देखकर हनुमानजी ने मन-ही-मन विचार किया कि अवश्य ही यह कोई विघ्न उपस्थित हुआ है। अतः जिस प्रकार बादल को वायु छिन्न-भिन्न कर देती है उसी प्रकार महान् वेगशाली हनुमानजी ने बहुत ऊँचे उठते हुए मैनाक के उच्चतर शिखर को अपनी छाती के धक्के से नीचे गिरा दिया। तब मैनाक मनुष्य रूप धारण करके अपने शिखर पर स्थित हो आकाशगत महावीर हनुमानजी से प्रसन्नचित्त होकर बोला—"श्रीराघवेन्द्र के पूर्वजों ने समुद्र की वृद्धि की थी और इस समय आप उनके हित में लगे हुए हैं अतः समुद्र आपका सत्कार करना चाहता है।

कृते च प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः।
सोऽयं तत्प्रतिकारार्थी त्वत्तः सम्मानमर्हति॥

(वा० रा० ५।१।११३)

यह सनातन धर्म है कि किसीने उपकार किया हो तो उसका प्रत्युपकार किया जाये। इसलिए प्रत्युपकार करने की इच्छा वाला यह समुद्र आपसे सम्मान पाने योग्य है। आप इसका सत्कार ग्रहण करें।

तिष्ठ त्वं हरिशार्दूल मयि विश्रम्य गम्यताम्।
तदिदं गन्धवत् स्वादु कन्दमूलफलं बहु॥

तदास्वाद्य हरिश्रेष्ठ विश्रान्तोऽथ गमिष्यसि।

(वा० रा० ५।१।११६)

अतः वानरशिरोमणि ! आप कुछ समय मेरे ऊपर विश्राम कर लीजिये। यहाँ वहुत से सुगन्धित और सुस्वादु कंदमूल फल हैं। कपिश्रेष्ठ ! इनका स्वादन करके थोड़ी देर विश्राम करके तव आगे की यात्रा कीजियेगा।

पूजिते त्वयि धर्मज्ञे पूजां प्राप्नोति मारुतः।

(वा० रा० ५।१।१२०½)

आप धर्म के ज्ञाता हैं, आपकी पूजा होने पर साक्षात् वायुदेव की पूजा हो जायेगी।

एवमुक्तः कपिश्रेष्ठस्तं नगोत्तममब्रवीत्।
प्रीतोऽस्मि कृतमातिथ्यं मन्युरेषोऽपनीयताम्॥

(वा० रा० ५।१।१३०)

हनुमानजी ने उस उत्तम पर्वत मैनाक से कहा—"मुझे भी आपसे मिलकर वड़ी प्रसन्नता हुई है। मेरा आतिथ्य तो हो गया। आप यह चिन्ता छोड़ दीजिये कि मैंने आपकी पूजा ग्रहण नहीं की।

त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा॥

(वा० रा० ५।१।१३१)

मेरे कार्य का समय मुझे अतिशीघ्रता करने के लिए प्रेरित कर रहा है। यह दिन वीता जा रहा है। मैंने वानरों से यह प्रतिज्ञा की हुई है कि मैं वीच में कहीं नहीं ठहर सकता।

दो०—हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम॥

(मा० ५।१)

ऐसा कहकर हनुमानजी ने हँसते हुए से मैनाक का अपने हाथ से स्पर्श किया और प्रणाम करके कहा—भाई ! *श्रीराम का कार्य किये बिना मुझे विश्राम कहाँ ?*

बुद्धि कौशल

हनुमानजी को मार्ग में सुरसा नामक नागमाता ने रोकना चाहा। वह देवताओं के द्वारा परीक्षार्थ भेजी गई थी। उसने कहा—कपिश्रेष्ठ ! देवताओं ने तुम्हें मेरा भक्ष्य वताकर अर्पित कर दिया है। मैं तुम्हें खाऊँगी। तुम मेरे मुँह में चले आओ। ऐसा कहते हुए अपना विशाल मुँह फैलाकर वह हनुमानजी के सामने खड़ी हो गई। हनुमानजी ने प्रसन्न मुख से कहा—देवी ! दशरथनन्दन श्रीराम दण्डकारण्य में लक्ष्मण और सीताजी के साथ आये थे। वहाँ रावण ने उनकी यशस्विनी भार्या सीताजी को हर लिया। मैं श्रीराम की आज्ञा से उनका दूत वनकर सीताजी की खोज के लिए जा रहा हूँ। श्रीराम का कार्य करके जव लौट आऊँ और सीताजी का समाचार श्रीराम को सुना दूँ तव मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा, तुम मुझे खा लेना। अभी मुझे जाने दे। परन्तु सुरसा ने अपने मुँह को योजन-भर फैलाया। हनुमानजी ने अपने शरीर को उससे दूना वढ़ा लिया। सुरसा मुँह का विस्तार वढ़ाती गई और हनुमानजी भी दूना रूप दिखाते गये। जव सुरसा ने अपने मुँह को सौ योजन का कर लिया तो हनुमानजी ने बुद्धि-कौशल से युक्ति की। उन्होंने मेघ की भाँति अपने शरीर को संकुचित कर लिया जिस प्रकार *विवेकशील मनुष्य प्रवृत्तियों के अत्यधिक बढ़ने पर उनसे बाहर निकल आता है।* हनुमानजी वहुत छोटा रूप धारण करके सुरसा के मुख में घुस गये और तुरंत वाहर निकल आये।

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा ।।
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ।।

(मा० ५।१।५)

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा ।।

(मा० ५।१।५½)

तव सुरसा देवी अपने असली रूप में प्रकट हुई और कहा—

अर्थ सिद्धयै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम्।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ।।

(वा० रा० ५।१।१७१)

कपिश्रेष्ठ ! तुम श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिए सुखपूर्वक जाओ। तुम वल-बुद्धि के भंडार हो। वैदेही को श्रीराम से शीघ्र मिलाओ। हनुमानजी हर्षित होकर आगे बढ़े।

दो०—राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ।।

(मा० ५।२)

बाधाओं से संघर्ष

समुद्र में सिंहिका राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की जल में परछाईं देखकर पकड़ लेती थी और उन्हें खाया करती थी। आज बहुत समय के बाद यह विशाल जीव मेरे वश में आया है। इसे खा लेने पर बहुत दिनों के लिए मेरा पेट भर जायेगा।

इति संचिन्त्य मनसाच्छायामस्य समाक्षिपत्।
छायायां गृह्यमाणायां चिन्तयामास वानरः॥
समाक्षिप्तोऽस्मि सहसा पंगूकृतपराक्रमः।
प्रतिलोमेन वातेन महानौरिव सागरे॥

(वा० रा० ५।१।१८६-१८७)

अपने मन में ऐसा सोचकर उस राक्षसी ने हनुमानजी की छाया पकड़ ली। इस पर वानरवीर हनुमानजी ने सोचा, अरे! सहसा मुझे किसने पकड़ लिया। इस पकड़ के सामने मेरा पराक्रम पंगु हो गया है। जैसे प्रतिकूल हवा चलने पर समुद्र में जहाज की गति अवरुद्ध हो जाती है, वैसी ही इस समय मेरी दशा हो गई है।

तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव वीक्षमाणस्तदा कपिः।
ददर्श स महासत्वमुत्थितं लवणाम्भसि॥

(वा० रा० ५।१।१८८)

यही सोचते हुए हनुमानजी ने उस समय ऊपर-नीचे, इधर-उधर दृष्टि डाली। उन्होंने एक विशालकाय प्राणी समुद्र के जल से

ऊपर उठा हुआ देखा।

सतां बुद्ध्वार्थतत्त्वेन सिंहिकां मतिमान् कपिः।
व्यवर्धत महाकायः प्रावृषीव बलाहकः॥

(वा० रा० ५।१।१९१)

तव बुद्धिमान हनुमानजी ने यह निश्चय किया कि यह सिंहिका है। उन्होंने वर्षाकाल के वादलों की भाँति अपने शरीर को वढ़ाना आरम्भ किया और विशालकाय हो गये।

तस्य सा कायमुद्वीक्ष्य वर्धमानं महाकपेः।
वक्त्रं प्रसारयामास पातालाम्बरसंनिभम्॥
घनराजीव गर्जन्ती वानरं समभिद्रवत्।

(वा० रा० ५।१।१९२)

उनके शरीर को वढ़ता देख सिंहिका ने अपना मुँह पाताल और आकाश के मध्य भाग के समान फैला लिया और मेघों की घटा के समान गर्जती हुई वानरवीर की ओर दौड़ी।

हृतहृत्सा हनुमता पपात विधुराम्भसि।
स्वयंभुवैव हनुमान् सृष्टस्तस्या निपातने॥

(वा० रा० ५।१।१९८)

हनुमानजी ने प्राणों के आश्रयभूत उसके हृदयस्थल को नष्ट कर दिया जिससे वह प्राणशून्य होकर समुद्र के जल में गिर पड़ी। विधाता ने ही हनुमानजी को उसे मार गिराने के लिए निमित्त वनाया।

भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्वं त्वया हतम्।
साधयार्थमभिप्रेतमरिष्टं प्लवतां वर॥

(वा० रा० ५।१।२००)

सिंहिका के मारे जाने पर आकाश में विचरने वाले प्राणियों ने हनुमानजी की स्तुति की—हे कपिवर ! आपने यह वड़ा ही महत्व-पूर्ण काम किया है जो इस विशालकाय प्राणी को मार गिराया है। अव आप विना किसी विघ्न-वाधा के अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध कीजिये।

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति॥

(वा० रा० ५।१।२०१)

वानरशिरोमणि! *जिस पुरुष में आपके समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता—ये चार गुण होते हैं उसे अपने कार्य में कभी असफलता नहीं होती।*

ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥

(मा० ५।२।२)

धीरबुद्धि पवनपुत्र वीर हनुमानजी सिंहिका को मारकर समुद्र के पार गये।

दया

लंका के द्वार पर लंकिनी नाम की एक राक्षसी रहती थी। वह वीर पवनकुमार के सामने खड़ी हो गई और गर्जती हुई बोली—"तू कौन है, यहाँ कहाँ से आया है? यहाँ आने का यथार्थ रहस्य ठीक-ठीक वता। रावण की सेना इस लंकापुरी की सव ओर से रक्षा करती है। तू इसमें प्रवेश नहीं कर सकता।" हनुमानजी ने कहा—"क्रूर स्वभाव वाली नारी! जो कुछ तुम पूछ रही हो मैं ठीक-ठीक वता दूँगा। परन्तु तुम हो कौन? नगर के द्वार पर क्यों खड़ी हो? इस प्रकार क्रोध करके मुझे क्यों डांट रही हो?"

लंकिनी कुपित होकर और भी कठोर वाणी बोली—"मैं राक्षस-राज रावण की सेविका हूँ। मैं इस नगरी की रक्षा करती हूँ।"

न शक्यं मामवज्ञाय प्रवेष्टुं नगरीमिमाम्।
अद्य प्राणैः परित्यक्तः स्वप्स्यसे निहतो मया॥

(वा० रा० ५।३।२९)

मेरी अवहेलना करके इस पुरी में प्रवेश करना किसी के लिए सम्भव नहीं है। आज तू मेरे हाथ से मारा जाकर पृथ्वी पर शयन करेगा।" हनुमानजी ने कहा—"इस लंका के वन-उपवन, अट्टालिकाओं, परकोटों, सवको देखने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। मैं पुरी को देखकर जैसे आया हूँ वैसे ही लौट जाऊँगा।" लंकिनी बोली—"रावण के द्वारा मेरी रक्षा हो रही है। तू मुझे परास्त किये बिना इस पुरी को नहीं देख सकता।" तब हनुमानजी ने उसे एक घूँसा मारा जिससे

वह रक्त का वमन करती हुई पृथ्वी पर लुढ़क गई।

मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी।

(मा० ५।३।२)

ततस्तु हनुमान् वीरस्तां दृष्ट्वा विनिपातिताम्।
कृपांचकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं च ताम्॥

(वा० रा० ५।३।४२)

तेजस्वी वीर हनुमानजी को उसे पड़ी देखकर और स्त्री समझकर दया आ गई। उन्होंने उस पर बड़ी कृपा की। लंकिनी हाथ जोड़कर विनय करने लगी—"सौम्य! मेरी रक्षा कीजिये। महाबली, सत्व-गुणशाली वीर पुरुष शास्त्र की मर्यादा पर स्थिर रहते हैं। मैं स्त्री होने से अवध्य हूँ। आप मेरे प्राण न लीजिए। मैं एक सच्ची बात बतलाती हूँ। साक्षात् स्वयंभु ब्रह्माजी ने मुझे वरदान दिया था कि जब किसी वानर के मारने से तू व्याकुल हो जाये तो समझ लेना कि राक्षसों का संहार निश्चित है।

प्रविश्य शापोपहतां हरीश्वर
पुरीं शुभां राक्षसमुख्यपालिताम्।
यदृच्छया त्वं जनकात्मजां सतीं
विमार्ग सर्वत्र गतो यथासुखम्॥

(वा० रा० ५।३।५१)

यह सुन्दर लंकापुरी अभिशाप से नष्ट होने वाली है। आप कौशलेश श्रीराम को हृदय में रखे हुए नगर में प्रवेश कीजिये और स्वेच्छानुसार सुखपूर्वक जनकनन्दिनी सीताजी की खोज कीजिये।

तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥
दो०—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥
प्रबिसि नगर कीजै सब काजा। हृदयं राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।

(मा० ५।३।४ से ५।४।१½)

जिसे श्रीरामचन्द्र एक बार कृपादृष्टि से देख लेते हैं उसके लिए विष अमृत हो जाता हैं, शत्रु मित्र हो जाते हैं, समुद्र गाय के खुर जैसा हो जाता है, अग्नि में शीतलता आ जाती है और सुमेरु पर्वत उसके लिए रज के समान हो जाता है।

तब हनुमानजी ने बहुत छोटा रूप धारण किया और श्रीराम का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया।

ब्रह्मचर्य

विवेक के विशिष्ट अंग हैं—स्वधर्म में स्थिरता, तत्त्वार्थ परिज्ञान में प्रवीणता और आत्म-विनिग्रह। आञ्जनेय का व्यक्तित्व इन सभी गुणों की परिभाषा है।

सीताजी की खोज करते-करते हनुमानजी रावण के महल में पहुँच गये। रावण के शयन-गृह में भी सीताजी को नहीं देखा।

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं।।
सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुं न दीखि बैदेही।।

(मा० ५।४।२, ३, ३½)

तब वे ढूँढते-ढूँढते रनिवास में पहुँच गये। वहाँ—

निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः।
जगाम महतीं शंका धर्मसाध्वसशंकितः।।

(वा० रा० ५।११।३७)

सोती हुई स्त्रियों को देखते-देखते हनुमानजी धर्म के भय से शंकित हो उठे। उसके मन में बड़ी भारी शंका उपस्थित हो गई।

परदारावरोधस्य प्रसुप्तसय निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति।।

(वा० रा० ५।११।३८)

वे विचार करने लगे कि इस प्रकार गाढ़ निद्रा में सोई हुई

पराई स्त्रियों को देखना अच्छा नहीं है। इससे तो मेरे धर्म का विनाश हो जायेगा।

न हि मे परदारणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः॥

(वा० रा० ५।११।३९)

मेरी दृष्टि अब तक कभी पराई स्त्री पर नहीं पड़ी थी। यहाँ आने पर पराई स्त्रियों का अपहरण करने वाले पापी रावण को भी मैंने देखा है।

तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी॥

(वा० रा० ५।११।४०)

परंतु दूसरे ही क्षण मनस्वी महावीरजी के मन में दूसरी विचार-धारा की अनुभूति हुई। उनका चित्त तो अपने लक्ष्य में सुस्थिर था इसलिए यह नई विचारधारा उन्हें अपने कर्त्तव्य का निश्चय कराने वाली हुई।

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते॥

(वा० रा० ५।११।४१)

उन्होंने निश्चय किया—"इसमें संदेह नहीं है कि रावण की स्त्रियाँ निःशंक सो रही थीं और उसी अवस्था में मैंने उन सबको अच्छी तरह देखा है। किन्तु मेरे मन में तो कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ है।

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्॥

(वा० रा० ५।११।४२)

वास्तव में मन ही सम्पूर्ण इन्द्रियों को शुभ और अशुभ अवस्थाओं में लगने की प्रेरणा देता है। जब मेरा मन पूर्णतः स्थिर है तो यह परस्त्री-दर्शन मेरे लिए धर्म का लोप करने वाला नहीं

हो सकता।

नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम्।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे॥

(वा० रा० ५।११।४३)

वैदेही सीताजी को दूसरी जगह मैं कहाँ ढूँढता ? किसी स्त्री को ढूँढने के लिए उसे स्त्रियों के बीच में ही ढूँढा जाता है।

यस्य सत्वस्य या योनिस्तस्यां तत् परिमार्गते।
न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम्॥

(वा० रा० ५।११।४४)

जिस प्राणी की जो जाति होती है उसे उसी में ढूँढा जाता है। खोई हुई युवती स्त्री को हरिनियों के बीच में तो नहीं खोजा जा सकता।

इस प्रकार मन की विशुद्धता और निहित कर्त्तव्य की अनिवार्यता का विचार कर हनुमानजी आत्मनिर्वेद से मुक्त हो गये।

उत्साह

सीताजी जब कहीं दिखाई नहीं दीं तो हनुमानजी इस प्रकार चिन्ता करने लगे, 'निश्चय ही अब मिथिलेशकुमारी सीता जीवित नहीं हैं, तभी तो बहुत खोजने पर भी मुझे दिखाई नहीं पड़ीं। सती-साध्वी सीताजी उत्तम आर्य मार्ग पर चलने वाली थीं। वे अपने शील और सदाचार की रक्षा में तत्पर रही होंगी, इसलिए दुराचारी रावण ने उन्हें मार डाला होगा। मैंने रावण का सारा रनिवास छान डाला, एक-एक करके सब स्त्रियों में भी देख लिया किन्तु अभी तक सीताजी का दर्शन नहीं हुआ। अब तो मेरा समुद्र-लंघन का सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया। जब मैं लौटकर जाऊँगा तब सारे वानर मिलकर मुझसे पूछेंगे, "वीर! वहाँ जाकर क्या किया? यह हमें बताओ। परंतु सीताजी को न देखकर मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा! सुग्रीवजी का निश्चित किया हुआ समय पूरा होने पर मैं निश्चय ही आमरण-उपवास करूँगा।' इस प्रकार कुछ क्षण हताश होकर वे फिर सोचने लगे—

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम्।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः॥

(वा० रा० ५।१२।१०)

हताश न होकर उत्साह को बनाये रखना ही सफलता का मूल कारण है। उत्साह ही परम सुख का हेतु होता है इसलिए अब मैं उन स्थानों में भी सीताजी की खोज करूँगा जहाँ अभी तक

अनुसंधान नहीं किया है।

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः।।

(वा० रा० ५।१२।११)

उत्साह ही मनुष्यों को सर्वथा इस प्रकार के कर्मों में प्रवृत्त करता है और वे जो कुछ करते हैं उस कार्य में वही उन्हें सफलता प्रदान करता है।

तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टेऽहमुत्तमम्।
अदृष्टांश्च विचेष्यामि देशान् रावणपालितान्।।

(वा० रा० ५।१२।१२)

अतः अब मैं और भी उत्तम एवं उत्साहपूर्वक प्रयत्न करूँगा। रावण के द्वारा सुरक्षित जिन स्थानों को अभी तक नहीं देख पाया हूँ वहाँ भी जाकर पता लगाऊँगा।

तब हनुमानजी ने वहाँ के सब स्थानों में विचरण किया। रावण के रनिवास में चार अंगुल का भी ऐसा स्थान नहीं रह गया जहाँ कपिवर हनुमानजी न पहुँचे हों।

दृढ़-निश्चय

वहुत खोज करने पर जव सीताजी कहीं दिखाई नहीं दीं तो हनुमानजी पुनः विचार करने लगे—

विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा।
रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम्॥

(वा० रा० ५।१३।१७)

मिथिलेशकुमारी को किसी गुप्त गृह में छुपाकर रखा गया हो, चाहे समुद्र में गिर कर वे जीवित न रही हों, चाहे श्रीराम के विरह का कष्ट न सहने के कारण उन्होंने शरीर त्याग दिया हो, किसी भी दशा में श्रीरामचन्द्रजी को इस वात की सूचना देना उचित न होगा क्योंकि वे सीताजी को वहुत प्यार करते हैं। इस समाचार के वताने में भी दोष है, और न वताने में भी दोष है। तव क्या उपाय करना चाहिए ? मुझे तो वताना और न वताना दोनों ही दुष्कर प्रतीत होते हैं।

वे पुनः सोचने लगे—यदि सीताजी को देखे विना मैं यहाँ से किष्किन्धापुरी लौटूँगा तो मेरा पुरुषार्थ ही क्या रह जायेगा ? फिर तो मेरा यह समुद्र-लंघन, लंका में प्रवेश, इत्यादि सव व्यर्थ हो जायेगा।

सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः।
नहि शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना॥

(वा० रा० ५।१३।३८)

इसलिए मैं यहाँ से किष्किन्धापुरी तो नहीं जाऊँगा। मिथिलेश-कुमारी को देखे विना मैं सुग्रीव के पास नहीं जाऊँगा।

हस्तादानो मुखादानो निततो वृक्षमूलिकः।
वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम्॥

(वा० रा० ५।१३।४०)

श्रीसीताजी का दर्शन न मिलने पर मैं यहाँ वानप्रस्थ ही हो जाऊँगा। जो कुछ फल आदि अपने आप मिल जायेंगे उसी को खा कर रहूँगा। दूसरों की इच्छा से मेरे मुँह में फल आदि वस्तु पड़ जायेगी उसी से निर्वाह कर लूँगा और संतोष, शौच आदि नियमों का पालन करते हुए वृक्ष के नीचे निवास करूँगा।

तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः।
नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वासितेक्षणाम्॥

(वा० रा० ५।१३।४५)

अथवा मैं नियमपूर्वक वृक्ष के नीचे निवास करने वाला तपस्वी हो जाऊँगा। परंतु यह *निश्चित है कि श्रीसीताजी को देखे बिना मैं यहाँ से कदापि नहीं लौटूंगा।*

विनाशे बहवो दोषा जीवन् प्राप्नोति भद्रकम्।
तस्मात् प्राणान् धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः॥

(वा० रा० ५।१३।४७)

जीवन का नाश कर देने में वहुत दोष हैं। *जो पुरुष जीवित रहता है वह अवश्य कभी न कभी कल्याण का भागी होता है।* इसलिए मैं इन प्राणों को धारण किये रहूँगा। जीवित रहने पर अभीष्ट वस्तु या सुख की प्राप्ति अवश्य होती है।

कपिश्रेष्ठ हनुमानजी के मन में यह विचार भी आने लगा कि "महावली रावण को ही क्यों न मार डालूँ जिससे सीता के अपहरण का भरपूर वदला सध जायेगा। या उसे उठाकर समुद्र के ऊपर-ऊपर ले जाऊँ और श्रीराम के हाथ में उसे सौंप दूँ जैसे पशुपति को पशु अर्पित किया जाये।" इस प्रकार सीताजी का दर्शन न पाकर हनुमानजी

चिन्ता में निमग्न हो गये। पुनः विचार करने लगे—

यावत् सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम्।
तावदेतां पुरीं लंका विचिनोमि पुनः पुनः॥

(वा० रा० ५।१३।५२)

जब तक मैं श्रीराम-पत्नी सीताजी का दर्शन न कर लूंगा तब तक लंकापुरी में निरंतर उनकी खोज करता रहूँगा।

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्ताविग्रथितेन्द्रियः।
उदतिष्ठन् महाबाहुर्हनूमान् मारुतात्मजः॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्राग्निमरुद्गणेभ्यः॥

(वा० रा० ५।१३।५८-५९)

इस प्रकार दो घड़ी सोच-विचार कर चिन्तारहित इन्द्रिय वाले महावीर मारुति हनुमानजी सहसा उठकर खड़े हो गये और बोले—लक्ष्मणजी सहित श्रीराम को नमस्कार है, जनकनन्दिनी सीतादेवी को नमस्कार है, रुद्र, इन्द्र, यम और वायुदेवता को नमस्कार है, चन्द्रमा, अग्नि एवं मरुद्गणों को नमस्कार है।

ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् देवाश्चैव तपस्विनः।
सिद्धिमग्निश्च वायुश्च पुरुहूतश्च वज्रभृत्॥

(वा० रा० ५।१३।६५)

स्वयम्भु भगवान् ब्रह्मा, अन्य देवगण, तपोनिष्ठ महर्षि, अग्निदेव, वायु तथा वज्रधारी इन्द्र भी मेरे कार्यों में सिद्धि प्रदान करें।

अवलम्ब

सीताजी की खोज करते हुए हनुमानजी को एक सुन्दर महल दिखाई दिया।

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहं भिन्न बनावा॥

(मा० ५।४।४)

उस महल में एक मंदिर भी वना हुआ था।

दो०—रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहं देखि हरष कपिराइ॥

(मा० ५।५)

उस महल पर धनुष-वाण के चिह्न अंकित होने से इतना सुन्दर लग रहा था कि उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता और वहाँ तुलसी के नये-नये विरवे देखकर कपिराज हनुमानजी हर्षित हो उठे।

लंका निसिचर निकर निवासा। इहां कहां सज्जन कर बासा॥
मन महुं तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयं हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥

(मा० ५।५।१ और २)

हनुमानजी सोचने लगे कि लंका में तो राक्षस ही राक्षस रहते हैं। ऐसे स्थान पर साधु-पुरुष का निवास कहाँ? हनुमानजी ऐसा सोच ही रहे थे कि उसी समय विभीषण की नींद खुल गई और वे

राम-राम जपते हुए उठ बैठे। जब हनुमान ने उनके मुख से श्रीराम नाम का उच्चारण सुना तो उन्होंने समझ लिया कि यह तो सज्जन है और अपने हृदय में वे हर्षित हो गये। हनुमानजी ने निश्चय कर लिया कि इनसे अवश्य ही परिचय करूँगा क्योंकि साधु से कार्य में हानि नहीं होती।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषण उठि तहं आए।।
करि प्रनाम पूंछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई।।
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई।।
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी।।

(मा० ५।५।३ और ४)

हनुमानजी ने तुरंत ब्राह्मण का रूप धर कर उन्हें पुकारा। सुनते ही विभीषण उठकर आये और प्रणाम किया। कुशल पूछ कर कहा—हे विप्र! अपना परिचय दीजिये। क्या आप हरिभक्तों में से कोई हैं? क्योंकि आपके प्रति मेरे हृदय में स्वाभाविक ही प्रीति उमड़ रही है। क्या आप दीनों पर अनुराग करने वाले श्रीराम तो नहीं हैं जो मुझे घर बैठे दर्शन देकर बड़भागी करने के लिए यहाँ चले आये हैं?

दो०—तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम।।(मा०५।६)

तब हनुमानजी ने अपना नाम बताकर श्रीराम की सब कथा उन्हें कह सुनाई। सुनते ही दोनों के शरीर पुलकित हो उठे और श्रीराम के गुण-समूहों का स्मरण कर-करके दोनों के मन आनन्द में मगन हो गये।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुं जीभ बिचारी।।
तात कबहुं मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।।
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।।
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा।।

(मा० ५।६।१ से २½)

तव विभीषण ने कहा—हे पवनसुत ! मेरी कथा सुनो। मैं यहाँ वैसे ही रहता हूँ जैसे दाँतों के बीच में बेचारी जीभ दवी पड़ी रहती है। हे तात ! क्या सूर्यकुल के नाथ श्रीरामचन्द्रजी मुझे अनाथ जानकर कभी मुझ पर कृपा करेंगे ? मेरे इस तामसी शरीर से न तो कुछ साधना वन पड़ती है और न श्रीराम के चरणकमलों में प्रीति ही हो पाती है। परंतु हे हनुमानजी ! अव मुझे विश्वास हो चला है कि श्रीराम की मुझ पर कृपा है क्योंकि *बिना श्रीराम-कृपा के संत से भेंट नहीं हो पाती।* यह श्रीरघुवीर की कृपा से ही हुआ जो आपने अपनी ओर से मुझे दर्शन दिया।

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
दो०—अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

(मा० ५।६।३-४ तथा ५।७)

हनुमानजी वोले—हे विभीषण ! सुनिये। *श्रीराम की यह रीति है कि वे सेवक पर सदैव ही प्रीति किया करते हैं।* अव मुझे ही देख लीजिये। भला मैं कहाँ का कुलीन हूँ ! मैं तो चंचल वानर हूँ और सव प्रकार से दीन-हीन हूँ। यहाँ तक कि यदि सवेरे-सवेरे कोई वानर का नाम ले ले तो उस दिन उसे भोजन ही नहीं मिले। मैं ऐसा अधम हूँ फिर भी मुझ पर भी उन्होंने कृपा की है। श्रीराम के गुणों का स्मरण करके हनुमानजी के नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये।

मर्यादा

सीताजी को खोजते हुए हनुमानजी अशोक-वाटिका में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने एक स्वर्णमय अशोक का वृक्ष देखा जो सब ओर से स्वर्णमयी वेदिकाओं से घिरा हुआ था। हनुमानजी उस हरी-भरी शिंशपा पर यह विचार करते हुए चढ़ गये कि यहाँ से इधर-उधर आती-जाती हुई सीताजी को देख सकूँगा।

संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी॥

(वा० रा० ५।१४।४६)

यह प्रातःकाल उपासना का समय है! इसमें मन लगाने वाली श्रीजानकीजी संध्या-उपासना के लिए इस पुण्यसलिला नदी के तट पर अवश्य आयेंगी।

इस विचार से महात्मा हनुमानजी सीताजी के शुभागमन की प्रतीक्षा में तत्पर हो सुन्दर सुशोभित अशोक वृक्ष पर छिपे रहकर चारों ओर दृष्टिपात करते रहे। वहाँ से उन्होंने थोड़ी ही दूरी पर एक ऊँचा मंदिर देखा।

ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम्॥
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम्॥

(वा० रा० ५।१५।१८ और १९)

उस मन्दिर में एक सुन्दर स्त्री पर उनकी दृष्टि पड़ी जो मलिन

वस्त्र धारण किये हुए राक्षसियों से घिरी हुई बैठी थी। ऐसा दिखाई देता था कि उपवास करने के कारण वह वहुत दुर्बल हो गई थी और वार-वार सिसक रही थी। शुक्ल-पक्ष के आरम्भ में चन्द्रमा की जैसी कला होती है वैसी निर्मल और कृश दिख रही थी।

अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम्॥

(वा० रा० ५।१५।२३)

उस दुखिया नारी के मुख पर आँसुओं की धारा वह रही थी। शोक और चिन्ता में मग्न वह दीन दशा में पड़ी हुई थी। निरंतर शोक में डूबी हुई थी।

मलपंकधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम्।
प्रभां नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम्॥

(वा० रा० ५।१५।३७)

उसके शरीर पर मैल जमी हुई थी। वह दीनता की मूर्ति वनी बैठी थी। श्रृंगार और अलंकार उसके शरीर पर नहीं था। वह ऐसी दीख रही थी जैसी वादलों से ढकी हुई चन्द्रमा की प्रभा।

तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव॥

(वा० रा० ५।१५।३८)

जैसे *अभ्यास न करने से विद्या की विस्मृति हो जाती है* वैसे ही क्षीण हुई सीताजी को देखकर हनुमानजी की बुद्धि संदेह में पड़ गई। परंतु

तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम्।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन्॥

(वा० रा० ५।१५।४०)

उन विशालाक्षी नेत्रों वाली सती-साध्वी राजपुत्री को देखकर हनुमानजी ने अपने मन में युक्तियों द्वारा उपपादन करते हुए यह निश्चय किया कि यही सीताजी हैं।

इयं कनकवर्णांगी रामस्य महिषी प्रिया।
प्रणष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति॥

(वा० रा० ५।१५।४८)

यह स्वर्ण के समान गौर अंगों वाली श्रीराम की प्रिय महारानी हैं जो अदृष्य हो जाने पर भी श्रीराम के मन से कभी अलग नहीं होती।

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च॥
स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च॥

(वा० रा० ५।१५।४९-५०)

यह वही सीताजी हैं जिनके लिए श्रीरामचन्द्र करुणा, दया, शोक और प्रेम से संतप्त होते रहते हैं। '—पत्नी खो गयी है—', यह सोचकर उनके हृदय में करुणा भर आती है। '—वह हमारे आश्रित थी—', यह सोचकर दया से द्रवित हो जाते हैं। '—मुझसे मेरी पत्नी विछुड़ गई—', यह सोचकर शोक से व्याकुल हो उठते हैं। '—और मेरी प्रियतमा मेरे पास नहीं रही—', यह सोचकर उनके हृदय में प्रेम-वेदना होने लगती है।

एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम्॥

(वा० रा० ५।१५।५४)

सीताजी का दर्शन पाकर पवनसुत हनुमानजी वहुत प्रसन्न हुए और मानसिक रूप से श्रीराम के पास जा पहुँचें, उनका चिन्तन करने लगे और श्रीराम के सौभाग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे कि उन्हें सीता जैसी साध्वी पत्नी मिली।

यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत्।
अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः॥

(वा० रा० ५।१६।१३)

"यदि श्रीराम इनके लिए समुद्रपर्यन्त पृथ्वी और सारे संसार को भी उलट देते तो भी उचित ही होता।

राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा।
त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात् कलाम्।

(वा० रा० ५।१६।१४)

यदि एक ओर तीनों लोकों का राज्य और दूसरी ओर जनक-नन्दिनी सीताजी को रखकर तुलना की जाये तो त्रिलोकी का राज्य सीताजी की एक कला के बराबर भी नहीं होगा।

इयं सा धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मनः।
सुता मैथिलराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता॥

(वा० रा० ५।१६।१५)

धर्मशील मिथिलेश महात्मा जनक की पुत्री सीताजी पतिव्रत धर्म में अत्यन्त दृढ़ हैं।

फिर वे सोचने लगे, "अहो! जो पृथ्वी जैसी क्षमाशील और प्रफुल्ल कमल के समान नेत्रों वाली हैं, जिनकी श्रीराम और लक्ष्मण ने सदा रक्षा की है, वे ही सीताजी आज इस वृक्ष के नीचे बैठी हैं और विकराल नेत्रों वाली राक्षसियाँ इनकी रखवाली करती हैं।"

देखि मनहि महुं कीन्ह प्रनामा। बैठेंहि बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयं रघुपति गुन श्रेनी॥
दो०—निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥

(मा० ५।७।४ और ५।८)

हनुमानजी ने सीताजी को मन-ही-मन प्रणाम किया। ऐसा लगता था कि वे रात्रि के चारों पहर बैठे-बैठे ही बिता देती हैं। शरीर दुर्बल हो गया है परंतु वे हृदय में श्रीराम के ही गुणों का स्मरण करते हुए श्रीराम-नाम जपती रहती हैं। अपने नेत्रों से नीचे देखते हुए श्रीरामजी के चरण-कमलों में निमग्न रहती हैं। श्रीसीताजी की दयनीय दशा देखकर पवनकुमार को बहुत दुःख हुआ।

तेहि अवसर रावनु तहं आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा।।
बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा।।

(मा० ५।८।१, १½)

उसी समय रावण वहाँ आ पहुँचा। दुष्ट रावण सीताजी को बहुत प्रकार से समझाने लगा। उसने साम, दान, भय और भेद दिखाया।

एकवेणी अधःशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम्।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते।।

(वा० रा० ५।२०।८)

एक वेणी धारण करना, पृथ्वी पर सोना, चिन्तामग्न रहना, मैले वस्त्र पहनना, विना अवसर के उपवास करना, ये सब तुम्हारे योग्य नहीं हैं।

स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम्।
मां प्राप्य हि कथं वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे।।

(वा० रा० ५।२०।११)

तुम स्त्रियों में रत्न हो। इस प्रकार मलिन वेश में मत रहो, आभूषण धारण करो। मुझे पाकर तुम भूषण आदि से सम्मानित रहोगी।

भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव।।

(वा० रा० ५।२०।१६)

हे मैथिली! तुम मेरी भार्या वन जाओ। पातिव्रत्य के मोह को छोड़ दो। यहाँ की सुन्दर रानियों में तुम सबमें श्रेष्ठ पटरानी बनो।

नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत्।
पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाहवे।।

(वा० रा० ५।२०।१९)

इस संसार में ऐसा कोई नहीं जो मेरा सामना कर सके। युद्ध में तुम मेरा महान पराक्रम देखना जिसके सामने कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं टिक सकता।

निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः।
व्रती स्थण्डिलशायी च शंके जीवति वा न वा।।

(वा० रा० ५।२०।२६)

राम ने तो विजय की आशा छोड़ दी है। वे श्रीहीन होकर वन-वन में फिर रहे हैं। व्रत का पालन करते हैं, मिट्टी की वेदी पर सोते हैं और अब तो मुझे यह भी संदेह होने लगा है कि वे जीवित भी हैं या नहीं।

मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवरस्त्रियः।
तास्त्वां परिचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा।।
यानि वैश्रवणे सुभ्रु रत्नानि च धनानि च।
तानि लोकांश्च सुश्रोणि मया भुंक्ष्व यथासुखम्।।

(वा० रा० ५।२०।३२ और ३३)

हे सुन्दरी! जैसे अप्सराएँ लक्ष्मी की सेवा करती हैं वैसे ही त्रिभुवन की श्रेष्ठ सुन्दरियाँ यहाँ तुम्हारी सेवा करेंगी और कुबेर के यहाँ जितने भी अच्छे रत्न और धन हैं, उन सबका तथा सब लोकों का तुम मेरे साथ सुखपूर्वक उपभोग करो।

न रामस्तपसा देवि न बलेन च विक्रमैः।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसापि वा।।

(वा० रा० ५।२०।३४)

देवि! न तप से, न बल से, न पराक्रम से, न धन से, न तेज से और न यश के द्वारा ही राम मेरी समानता कर सकते हैं।

सीताजी ने एक तिनके की ओट (पर्दा) करके उत्तर दिया—

कुलं सम्प्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया।
एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी।।
रावणं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत्।
नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव।।

(वा० रा० ५।२१।५ और ६)

मैं एक महान कुल की बेटी हूँ और ब्याह करके एक

पवित्र कुल में बहू बनकर आई हूँ। यशस्विनी वैदेहीजी ने उसकी ओर अपनी पीठ फेर ली और कहा—रावण! मैं सती और परायी स्त्री हूँ। तुम्हारी भार्या बनने योग्य नहीं हूँ।

आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम्।
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम्।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम्॥

(वा० रा० ५।२१।८)

तुम अपने को आदर्श बनाकर अपनी स्त्रियों में ही अनुराग रखो क्योंकि जो अपनी पत्नी से संतुष्ट नहीं रहता उसकी बुद्धि धिक्कारने योग्य है। उस चपल इन्द्रिय वाले पुरुष को परायी स्त्रियाँ पराभव को पहुँचा देती हैं।

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम्।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च॥

(वा० रा० ५।२१।११)

जिस राजा का मन अपवित्र हो और सदुपदेश ग्रहण नहीं करता हो ऐसे अन्यायी के हाथ में से बड़े-बड़े समृद्धिशाली राज्य और नगर नष्ट हो जाते हैं।

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा॥

(वा० रा० ५।२१।१५)

जैसे सूर्य से उसकी प्रभा अलग नहीं होती, वैसे ही मैं श्री राघवेन्द्र से अभिन्न हूँ। ऐश्वर्य या धन के प्रलोभन से तुम मुझे लुभा नहीं सकते।

तस्य धर्मात्मनः पत्नी स्नुषा दशरथस्य च।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति॥

(वा० रा० ५।२२।१६)

मैं धर्मात्मा श्रीराम की धर्मपत्नी और महाराजा श्री दशरथ-जी की पुत्रवधु हूँ। अरे पापी! मुझसे पाप की बातें करते हुए तेरी

जीभ क्यों नहीं गल जाती।

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुं कि नलिनी करइ बिकासा।।
अस मन समुभु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।।
सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।।

(वा० रा० ५।८।४ और ५)

सुन, क्या कभी जुगनू के प्रकाश से कमलिनी खिल सकती है? इस वात को तू समझ ले। रे दुष्ट! क्या तू श्रीरघुवीर के वाण को नहीं जानता। रे पापी! तू मुझे सूने में हर लाया है। रे अधम! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती।

तव रावण वोला—"सीता! तुमने मेरा अपमान किया है। मैं तुम्हारा सिर काट डालूँगा। अव भी जल्दी मेरी वात मान लो, नहीं तो तुझे अपने जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।" इस पर सीताजी ने कड़ककर कहा—

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।।

(मा० ५।६।२)

रे दशमुख! यह समझ ले कि मेरे स्वामी श्रीराम की भुजा श्याम-कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी की सूंड जैसी विशाल है। वही मेरे कंठ में पड़ सकती है या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ! सुन, यह मेरा सच्चा प्रण है।

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं।।
सीतल निसित बहसि बन धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा।।

(मा० ५।६।३)

तव सीताजी ने तलवार को सम्वोधित करके कहा—श्रीरघुनाथ जी के विरह की ज्वाला जो मेरे हृदय में धधक रही है उसे तू बुझा दे। तेरी धार वहुत शीतल, तीखी और पैनी है। तू मेरे दुःखों के वोझ को दूर कर दे।

यह सुनते ही रावण सीताजी को मारने दौड़ा। तव मंदोदरी ने

वीच में आकर समझाया। रावण राक्षसियों से यह कहता हुआ चला गया कि सीता को सब प्रकार से भय दिखलाओ और यदि महीने-भर में इसने कहा न माना तो तलवार से मार डालूँगा।

सा राक्षसीमध्यगता च भीरु-
र्वाग्भिर्भृशं रावणतर्जिता च।
कान्तारमध्ये विजने विसृष्टा
बालेव कन्या विललाप सीता॥

(वा० रा० ५।२८।२)

रावण द्वारा फटकारी गई और राक्षसियों के वीच में बैठकर उनके द्वारा धमकाई गई सीताजी ऐसे विलाप करने लगीं जैसे निर्जन या वीहड़ वन में अकेली छूटी हुई अवयस्क वालिका।

हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे
हा राममातः सह मे जनन्यः।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या
महार्णवे नौरिव मुढवाता॥

(वा० रा० ५।२८।८)

हा राम! हा लक्ष्मण! हा सुमित्रे! हा रामजननी कौसल्ये! हा मेरी माताओ! जिस प्रकार ववंडर में नौका महासागर में डूव जाती है वैसे ही आज मैं मन्दभागिनी सीता प्राणसंकट की दशा में पड़ी हुई हूँ।

तव सीताजी विचार करने लगीं कि क्या करूँ? विधाता ही विपरीत हो गया है। न तो आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी। आकाश में अंगारे दिखायी देते हैं परंतु पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता। चन्द्रमा अग्निमय है परंतु वह भी मुझे अभागिनी समझकर आग नहीं वरसाता। हे अशोक-वृक्ष! तुम्हीं मेरा शोक दूर करो न! अपना 'अशोक' नाम सत्य कर डालो।

सीताजी को इस प्रकार परम व्याकुल देखकर हनुमानजी को एक-एक क्षण कल्प के समान लग रहा था।

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई।।

(मा० ५।१२।२)

वे श्रीराम के गुणों का वर्णन करने लगे जिससे सीताजी का दुःख भाग गया। वे एकाग्र होकर ध्यान से सुनने लगीं। हनुमानजी ने आदि से अब तक की कथा सुनाई। सीताजी बोलीं—

येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम्।
स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः।।

(अ० रा० ५।३।१८)

सुतरा, जिसने मेरे कानों को अमृत के समान प्रिय लगने वाले ये वचन कहे हैं वह प्रियभाषी महाभाग मेरे सामने प्रकट हों।

तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ।।

(मा० ५।१२।४)

तब हनुमानजी सीताजी के समीप चले आये। उन्हें देखते ही सीताजी ने मुँह फेर लिया। हनुमानजी ने कहा—

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की।।

(मा० ५।१२।४½)

माता जानकी! मैं श्रीराम का दूत हूँ। मैं करुणानिधान की सच्ची शपथ करता हूँ।

सीताजी ने हनुमानजी से कहा—

तुम्हें पहिचानति नाहीं बीर।
इन नैननि कबहुं नहिं देख्यौ, रामचंद्र के तीर।।
लंका बसत दैत्य अरु दानव, तिन के अगम सरीर।
तोहि देखि मेरो जिय डरपत, नैननि आवत नीर।।
तबकर काढ़ि अँगूठी दीन्हीं, जिहिं जिय उपज्यौ धीर।
'सूरदास' प्रभु लंका कारन, आए सागर तीर।।

(सूर राम चरितावली ८१)

"भाई! मैं तुम्हें नहीं पहचानती। अपनी आँखों से तुम्हें

श्री रघुनाथजी के पास कभी नहीं देखा। लंका में दैत्य और दानव रहते हैं। वे माया से कब कैसा रूप बना लेंगे, इसका कुछ ठिकाना नहीं। इसलिए तुम्हें देखकर मेरा मन डर रहा है और मेरे नेत्रों में जल भर आता है।"

यह सुनकर हनुमानजी ने अँगूठी निकालकर दे दी जिससे जानकीजी के मन में धैर्य उत्पन्न हुआ। तब हनुमानजी बोले—"प्रभु लंका विजय करने के लिए समुद्र के किनारे आ गये हैं।

मुद्रे सन्ति सलक्ष्मणाः कुशलिनः श्रीरामपाताः स्वयं
सन्ति स्वामिनी मा विधेहि विधुरं चेतोऽनया चिन्तया।
एनां व्याहर मैथिलाऽधिपसुते नामान्तरेणाऽधुना
रामस्त्वद्विरहेण कंकणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान्॥

(हनुमन्नाटक ६।१६)

सीताजी ने हनुमानजी से (मर्यादानुसार) मुद्रिका को माध्यम बनाकर कहा—हे मुद्रिके ! लक्ष्मण सहित आर्यपुत्र श्रीराम स्वयं कुशल से तो हैं न ?

हनुमानजी—जी हाँ, महारानी ! वे कुशलपूर्वक हैं। आप उनकी चिन्ता से अपने हृदय को व्याकुल न कीजिए। हे मिथिलाधीश राजकुमारी ! इस अँगूठी को अब आप दूसरे नाम से पुकारा कीजिये क्योंकि आपके वियोग में अत्यन्त दुर्बल हो जाने के कारण श्रीराम की अंगुलि का आभूषण नहीं, हाथ का कंगन बन गयी है।

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम्॥

(वा० रा० ५।३६।७)

सीताजी ने कहा—तुम बड़े पराक्रमी, शक्तिशाली और बुद्धिमान हो जो तुम अकेले ही इस राक्षसपुरी में आ पहुँचे।

कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः॥

(वा० रा० ५।१६।१५)

"यह बताओ कि पुरुषोत्तम श्रीराम के मन में कोई व्यथा तो नहीं है? वे संतप्त तो नहीं होते? उन्हें जो कुछ करना है वह करते हैं या नहीं?

कच्चिन्न दीनः सम्भ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति।
कच्चित् पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः॥

(वा० रा० ५।३६।१६)

श्रीराम को किसी प्रकार की दीनता या भ्रान्ति तो नहीं हो जाती? वे कर्त्तव्य-पालन में मोह के वशीभूत तो नहीं हो जाते? क्या श्रीराम पुरुषार्थ तो करते हैं?

कच्चिन्मित्राणि लभतेऽमित्रैश्चाप्यभिगम्यते।
कच्चित् कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः॥

(वा० रा० ५।३६।१८)

क्या श्रीराम स्वयं प्रयत्नपूर्वक मित्रों का संग्रह करते हैं? क्या उनके शत्रु भी शरणागत होकर अपनी रक्षा के लिए उनके पास आते हैं? क्या उन्होंने मित्रों का उपकार करके अपने लिए कल्याणकारी बना लिया है? क्या वे कभी अपने मित्रों से भी उपकृत या पुरस्कृत होते हैं।

कच्चिदाशास्ति देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः।
कच्चिद् पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते॥

(वा० रा० ५।३६।१९)

क्या श्रीराम जी कभी देवताओं का भी कृपा-प्रसाद चाहते हैं? उनकी कृपा के लिए प्रार्थना करते हैं? क्या वे पुरुषार्थ और दैव, दोनों का आश्रय लेते हैं?

कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं
तस्याननं पद्मसमानगन्धि।
मया विना शुष्यति शोकदीनं
जलक्षये पद्ममिवातपेन॥

(वा० रा० ५।३६।२८)

क्या मेरे विना श्रीराम का शोक से दुःखी हुआ स्वर्ण जैसा कान्तिमान और कमल जैसा सुगन्धित मुख सूख तो नहीं गया जैसे कि पानी सूख जाने पर कमल भी धूप से सूख जाता है ?

धर्मापदेशात् त्यजतः स्वराज्यं
मां चाप्यरण्यं नयतः पदातेः ।
नासीद् यथा यस्य न भीर्न शोकः
कच्चित् स धैर्यं हृदये करोति ।।

(वा० रा० ५।३६।२६)

धर्मपालन के लिए राज्य का त्याग करके जव मुझे पैदल ही वन में लाये तव उन्हें तनिक भी भय या शोक नहीं हुआ था। क्या वे श्रीराम इस संकट के समय हृदय में धैर्य तो धारण करते हैं न ?

तीर्त्वा यास्यत्यमेयात्मा वानरानीकपैः सह ।
हनुमानह मे स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ ।।
आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम् ।।

(अध्यात्म रा० ५।३।४७ और ४८)

सीताजी ने पूछा—भगवान् राम *अमेयात्मा* हैं, उनके शरीर का कोई माप नहीं है, वे सर्वव्यापक हैं; किन्तु वानर यूथपों के साथ वे किस प्रकार समुद्र को पार करके यहाँ आयेंगे ?

हनुमान जी बोले—वे दोनों नरश्रेष्ठ मेरे कन्धों पर चढ़कर आयेंगे और वानरराज सुग्रीव सेना सहित इस विस्तीर्ण समुद्र को आकाश मार्ग से एक क्षण में पार कर आपको प्राप्त करने के लिए सारे राक्षस दलों को भस्म कर डालेंगे।

तव श्री सीताजी को हनुमानजी ने श्रीराम का संदेश सुनाया—

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुं सकल भए बिपरीता।।
नव तरु किसलय मनहुं कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू।।
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।।

जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।
कहेहू तें कछु दु:ख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई।।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं।।
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।।

(मा० ५।१४।१ से ४)

श्रीराम ने कहलाया है—सीते! तुम्हारे वियोग में मेरे लिए सब कुछ उलटा हो चला है। वृक्षों की नयी कोंपलें मुझे अग्नि जैसा ताप देती हैं। रात्रि कालरात्रि के समान भयानक लगती है। शीतल चन्द्रमा सूर्य के समान तपता हुआ जान पड़ता है। कमल भाले के समान चुभता है, मेघ बरसता है तो लगता है कि खौलता हुआ तेल बरसता है। प्रकृति में जो हित करने वाले लगते थे, वे सब पीड़ा देने वाले हो गये हैं। यहाँ तक कि शीतल, मंद, सुगंधित वायु भी साँप की विषैली और गर्म श्वांस जैसी लगती है। मन का दु:ख कह देने से कुछ घट जाता है परन्तु किससे कहूँ! मेरा दु:ख कोई नहीं जानता। मेरे और तुम्हारे प्रेम का तत्व केवल मेरा मन ही जानता है। परन्तु वह मन सदा तुम्हारे पास ही रहता है। बस इतने में ही मेरे प्रेम का सार समझ लेना।

श्रीराम का यह संदेश सुनते ही वैदेही जी प्रेम-मग्न हो उठीं और उन्हें अपने शरीर तक की सुध नहीं रह गयी।

कह कपि हृदयं धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता।।
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई।
दो०—निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयं धीर धरु जरे निसाचर जानु।।

(मा० ५।१४।५ और ५।१५)

हनुमानजी ने कहा—हे माता! हृदय में धैर्य रखिये और सेवकों को सुख देने वाले श्रीराम का स्मरण करती रहिये और अपने हृदय में श्रीराम की शक्ति का पूरा विश्वास रखिये। मेरा निवेदन

है कि यह अधीरता मन से निकाल दीजिये।

दो०—सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाई परम लघु ब्याल॥

(मा० ५।१६)

हे माता! सुनिये। वानरों में कोई वहुत वल-बुद्धि नहीं होती परन्तु *श्रीराम का ऐसा प्रताप है कि छोटा-सा सर्प भी चाहे तो गरुड़ को निगल जाये।*

मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुं बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुं कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

(मा० ५।१६।१ और २)

भक्ति, प्रताप, तेज और वल से भरे हुए हनुमानजी के वे वचन सुनकर सीताजी को वड़ा संतोष हुआ। उन्होंने हनुमानजी को श्रीराम का प्रिय जानकर आशीर्वाद दिया—"पुत्र! तुममें सदा वल और शील भरा रहे। तुम्हें कभी बुढ़ापा न हो, अमर रहो और गुणों के निधान रहो। *श्रीराम कृपा सर्वत्र सर्वदा बनी रहे।*" हनुमानजी के कान में यह शब्द पड़ते ही कि श्रीराम-कृपा वनी रहे, वे पूर्णतः प्रेम में मग्न हो गये।

दो०—देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयं धरि तात मधुर फल खाहु॥

(मा० ५।१७)

श्री सीताजी ने हनुमानजी को बुद्धि और वल में निपुण देखकर कहा—जाओ बेटा! *श्रीराम के चरणों का हृदय में ध्यान करते हुए मीठे-मीठे फल खाओ।*

निर्भीकता

सीताजी को प्रणाम करके हनुमानजी वाग में घुस गये। फल खाये और वृक्षों को तोड़ने लगे। वहाँ वहुत से योद्धा रखवाले थे। कुछ को तो उन्होंने मार डाला और कुछ ने भाग कर रावण के यहाँ पुकार की कि एक वड़ा भारी वानर आया है। उसने अशोक-वाटिका उजाड़ डाली, फल खाये, वृक्षों को उखाड़ फेंका और रखवालों को भी मसल-मसल कर पृथ्वी पर डाल दिया। यह सुनकर रावण ने वहुत से योद्धा भेजे। उन्हें देखकर हनुमानजी ने गर्जना की—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः।।
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमांशत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः।।
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः।।
अर्दयित्वा पुरीं लंकामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्।।

(वा० रा० ५।४२।३३ से ३६)

अत्यन्त वलवान श्रीराम और महावली लक्ष्मण की जय हो। श्री राघवेन्द्र द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीव की जय हो। मैं महान पराक्रमी कौशलेन्द्र श्रीरामचन्द्र का दास हूँ। हनुमान मेरा नाम है। मैं वायु का पुत्र हूँ। शत्रु सेना का संहार करने वाला हूँ। जव मैं

हजारों वृक्ष और पत्थरों से प्रहार करूँगा तव हजारों रावण मिलकर भी युद्ध में मेरा सामना नहीं कर सकेंगे। मैं लंकापुरी को तहस-नहस कर डालूँगा और मिथिलेशनन्दिनी सीताजी को प्रणाम करके सव राक्षसों के देखते-देखते अपना कार्य सिद्ध करके जाऊँगा।

दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि।।

(मा० ५।१८)

तव हनुमानजी ने वहुतों को मार डाला। जो अधमरे थे वे रावण को पुकारते हुए भाग निकले। तव रावण ने अपने पुत्र अक्षकुमार को भेजा। हनुमानजी ने एक वृक्ष उखाड़ कर उससे अक्षकुमार को मार डाला।

दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,
मगन महीमें, एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक,
चीरि-फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं।।

(कवितावली, लंकाकांड ४१)

हनुमानजी ने किसी को तो लपक कर दवोच डाला और किसी को समुद्र में डुवो दिया, किसी को धरती में खोदकर गाड़ दिया, किसी को आकाश में उछाल कर उड़ा दिया, किसी को हाथ पकड़ कर पछाड़ मारा, किसी के पैर उखाड़ फेंके, किसी को चीर-फाड़ डाला और किसी को लात से मसल कर पीस डाला।

जव रावण ने अक्षकुमार के वध का समाचार सुना तो क्रोधित होकर उसने अपने पुत्र मेघनाद को भेजा कि उसे वाँध कर लाओ। हनुमानजी ने एक वहुत वड़ा वृक्ष उखाड़ कर मेघनाथ के रथ को तोड़ दिया और उसे नीचे पटक दिया। तव उसने उठकर हनुमानजी पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया।

दो०—ब्रह्म अस्त्र तेहि सांधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार।। (मा० ५।१९)

हनुमानजी ने यह विचार किया कि यदि ब्रह्मास्त्र का आदर नहीं करता हूँ तो उसकी महिमा समाप्त हो जायेगी ।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी । भव बंधन काटहिं नर ग्यानी ।।
तासु दूत कि बंध तरु आवा । प्रभु कारज लगि कपिहिं बंधावा ।।

(मा० ५।१६।२)

जिनका नाम जप कर विवेकी मनुष्य भव-बंधनों से मुक्त हो जाते हैं क्या कभी उनका दूत बंधन में आ सकता है ? परन्तु हनुमान जी को तो प्रभु का कार्य करना था, इसलिए स्वयं अपने को बँधवा लिया ।

नीति

हनुमानजी को वाँधकर मेघनाद रावण के दरवार में लाया।

कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयं बिषाद ।। (मा० ५।२०)

हनुमानजी को देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ वहुत हँसा परन्तु पुत्र-वध की याद करके उसके हृदय में विषाद उत्पन्न हुआ। उसने मंत्री से कहा—

प्रहस्त पृच्छैनमसौ किमागतः किमत्र कार्यं कुत एव वानरः।
वनं किमर्थं सकलं विनाशितं हताः किमर्थं मम राक्षसा बलात् ।।
(अध्यात्म रा० ५।४।५)

प्रहस्त! इस वन्दर से पूछो तो सही कि यह यहाँ क्यों आया है? इसका क्या कार्य है और कहाँ से आया है? इसने मेरी सारी वाटिका क्यों उजाड़ डाली और मेरे वीर राक्षसों को वलपूर्वक क्यों मार डाला?

प्रहस्त ने कहा—वानर! तुम डरो नहीं। यह वताओ कि क्या तुम कुबेर, यम, वरुण या विष्णु के दूत हो। इस नगर में आने का तुम्हारा क्या उद्देश्य है?

हनुमानजी ने रावण से कहा—

एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम् ।।
अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च।
धनदेन न मे सख्यं विष्णुना नास्मि चोदितः ।।
(वा० रा० ५।५०।१२-१३)

मैं न तो इन्द्र, यम अथवा वरुण का दूत हूँ, न कुबेर से मेरी मैत्री है, न भगवान विष्णु ने मुझे यहाँ भेजा है।

शृणु स्फुटं देवगणाद्यमित्र हे रामस्य दूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः।
यस्याखिलेशस्य हृताधुना त्वया भार्या स्वनाशायशुनेव सद्धविः॥

(अध्यात्म रा० ५।४।८)

हे देवों के शत्रु रावण! तुम स्पष्ट सुनो। जिस प्रकार कुत्ता हवि को चुरा ले जाता है उसी प्रकार तुमने अपना नाश कराने के लिए जिन अखिलेश्वर की साध्वी पत्नी को हर लिया है, मैं उन्हीं सर्वान्तर्यामी भगवान श्री रामचन्द्र का दूत हूँ।

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥
जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥

(मा० ५।२०।३ और ५।२१)

हे दशशीश! जिनके वल से ब्रह्मा सृष्टि का सृजन और विष्णु सृष्टि का पालन और महेश सृष्टि का संहार करते हैं, जिनके वल से हजार फणों वाले शेषजी पर्वत-वन आदि सहित समस्त ब्रह्मांडों को सिर पर धारण करते हैं, जिनके ही लेशमात्र वल से तुमने भी समस्त चराचर जगत को जीता और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम चुरा लाये हो, मैं उन्हीं का दूत हूँ।

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

(मा० ५।२१।२, ३)

हे राक्षसों के स्वामी! मुझे भूख लगी थी तो मैंने फल खाये और अपने वानरी स्वभाव से वृक्ष तोड़े। सवको अपनी देह प्रिय होती है। परन्तु दुष्ट राक्षस जव मुझे मारने लगे तो जिन्होंने मुझे मारा

उनको मैंने भी मारा। तव तुम्हारे पुत्र ने मुझको बाँध लिया। अपने बँधने की मुझे कोई लज्जा नहीं है क्योंकि मैं तो अपने स्वामी का कार्य करना चाहता हूँ।

केनचिद् रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम्॥
दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः।
श्रूयतामेव वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो॥

(वा० रा० ५।५०।१८, १६)

मैं यहाँ श्रीरामचन्द्र के कार्य से तुम्हारे पास आया हूँ। राजन! मैं अमित तेजस्वी श्री राघवेन्द्र का दूत हूँ। ऐसा समझ कर मेरे इस हितकारी वचन को ध्यान से सुनो।

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥
जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥
प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥

(मा० ५।२१।४, ५; ५।२२)

रावण! मैं तुमसे विनयपूर्वक कहता हूँ मेरी सीख सुनो। *तुम अभिमान छोड़ दो।* अपने पवित्र कुल का तो कुछ विचार करो और *भ्रम छोड़कर भक्त-भयहारी श्रीराम का भजन करो।* जो काल देवताओं, राक्षसों और समस्त चराचर को खा जाता है वह भी जिनसे अत्यन्त भयभीत रहता है उनसे कभी भी वैर न करो और मेरे कहने से जानकी जी को उन्हें दे दो। *श्रीराम शरणागतों के रक्षक हैं। वे दया के सिन्धु हैं। शरण जाने पर मेरे स्वामी तुम्हारे अपराध क्षमा करके अपनी शरण में रख लेंगे।*

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥

(मा० ५।२२।१)

तुम श्रीराम के चरणकमलों को अपने हृदय में धारण करो तो तुम लंका का अचल राज्य कर सकोगे। तनिक सोचो तो सही। ऋषि पुलस्त्यजी का यश चंद्रमा जैसा निर्मल है। उसमें तुम कलंक मत बनो।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा।।
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी।।
राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।।
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं।।

(मा० ५।२२।२, ३)

मद-मोह को छोड़कर विचार करके देखो। *राम-नाम के बिना वाणी शोभा नहीं पाती।* जैसे कि सुन्दर स्त्री भी विना वस्त्र अशोभनीय होती है भले ही वह गहनों से सजी हुई हो। जो राम-विमुख होता है उसकी सम्पत्ति और प्रभुता रही-सही भी चली जाती है। अतः राम-विमुख को सम्पत्ति और प्रभुता मिलना या न मिलना एक-सा है। जिन नदियों के मूल में जल-स्रोत नहीं होता वे वर्षा वीत जाने पर तुरन्त ही सूख जाती हैं।

सुनु, दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी।।
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही।।

(मा० ५।२२।४)

हे रावण ! मैं तुमसे निश्चित रूप से कहता हूँ कि जो श्रीराम से विरोध करता है उसकी रक्षा कोई नहीं कर सकता। श्रीरामजी से द्रोह करने वाले तुम्हें हजारों शंकर, ब्रह्मा और विष्णु भी नहीं वचा सकते। *अभिमान बहुत पीड़ा देने वाला अंधकार रूप है और मोह उसकी जड़ है। तुम अभिमान छोड़ दो और रघुनायक दयासागर भगवान श्रीरामचन्द्र का भजन करो।*

अतो भजस्वाद्य हरिं रमापतिं रामं पुराणं प्रकृतेः परं विभुम्।
विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां भजस्व रामं शरणागतप्रियम्।
सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात्।।

(अ० रा० ५।४।२३)

जो प्रकृति से परे, पुराणपुरुष, सर्वव्यापक आदि नारायण, लक्ष्मीपति, हरि भगवान हैं, ऐसे भगवान श्रीरामचन्द्र का भजन करो। *अपने हृदय में स्थित शत्रुभावरूप को छोड़ दो और* शरणागत वत्सल श्रीराम का भजन करो। सीताजी को आगे करके और अपने पुत्र-बंधु-बांधवों सहित *श्रीरामचन्द्र की शरण जाकर उन्हें नमस्कार करो। तब तुम भय से मुक्त हो जाओगे।*

जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥

(मा० ५।२३।१, १½)

यद्यपि हनुमानजी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य से भरी हुई वहुत ही हित की बातें समझाईं परन्तु परम अभिमानी रावण वहुत हँसकर वोला—"हमें यह वानर वड़ा ज्ञानी, गुरु आ मिला है। तेरी मृत्यु निकट आ गयी है जो मुझे शिक्षा देने चला है।"

उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥

(मा० ५।२३।२)

हनुमानजी ने कहा—"मेरी नहीं तुम्हारी मृत्यु निकट आयी है परन्तु तुम्हें तो मतिभ्रम है, मैंने यह भलीभाँति समझ लिया।"

यह सुनकर रावण क्रोध से तमतमा उठा और राक्षसों से वोला—"इस मूर्ख बंदर को पकड़ कर क्यों नहीं मार डालते ?" यह सुनते ही राक्षस उन्हें मारने के लिए दौड़े। विभीषण ने रावण को समझाया कि दूत का वध करना नीति के विरुद्ध है। तव रावण हँसकर वोला कि इनकी पूँछ में आग लगा दो।

कौतुक कहं आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हांसी॥
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूंछ प्रजारी॥

(मा० ५।२४।३, ३½)

तव राक्षसों ने ढोल पीटते हुए और तालियाँ वजाते हुए हनुमान जी को नगर में फिराया और पूँछ में आग लगा दी।

पुरुषार्थ

दीप्यमाने ततस्तस्य लांगूलाग्रे हनूमतः ।।
राक्षस्यस्ता विरूपाक्ष्यः शंसुर्देव्यास्तदप्रियम् ।
यस्त्वया कृतसंवादः सीते ताम्रमुखः कपि ।।
लांगूलेन प्रदीप्तेन स एष परिणीयते ।

(वा० रा० ५।५३।२३, २४)

जव हनुमानजी की पूँछ में आग लगाई जा रही थी उस समय राक्षसियों ने सीताजी के पास जाकर यह अप्रिय समाचार कहा—"सीते ! जिस लाल मुख वाले वानर ने तुम्हारे साथ वातचीत की थी, उसकी पूँछ में आग लगाकर उसे सारे नगर में घुमाया जा रहा है।"

मंगलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ।
यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ।।

(वा० रा० ५।५३।२६, २७)

यह सुनकर विशालाक्षी पवित्र-हृदया सीताजी ने महाकपि हनुमानजी के लिए मंगलकामना करते हुए अग्निदेव की पूजा की और वोली—"हे अग्निदेव ! यदि मैंने पति की सेवा की है और यदि मुझमें कुछ भी तपस्या और पातिव्रत्य का वल है तो आप हनुमानजी के लिए शीतल हो जाइये।

यदि किंचिदनुक्रोशस्तस्य मय्यस्ति धीमतः ।
यदि वा भाग्यशेषो मे शीतो भव हनूमतः ।।

(वा० रा० ५।५३।२८)

"यदि बुद्धिमान श्रीराम के मन में मेरे प्रति लेशमात्र भी दया है अथवा मेरा भाग्य शेष है तो आप हनुमानजी के लिए शीतल हो जाइये ।

यदि मां वृत्तसम्पन्नां तत्समागमलालसाम् ।
स विजानाति धर्मात्मा शीतो भव हनूमतः ।।

(वा० रा० ५।५३।२६)

"यदि धर्मात्मा श्रीराम भद्र मुझे सदाचार से सम्पन्न और अपने से मिलने के लिए उत्सुक जानते हैं तो आप हनुमानजी के लिए शीतल हो जाइये ।"

ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिणशिखोऽनलः ।
जज्वाल मृगशावाक्ष्याः शंसन्निव शुभं कपेः ।।

(वा० रा० ५।५३।३१)

मृगनयनी सीताजी की ऐसी प्रार्थना करने पर तीखी लपटों वाले अग्निदेव मानो हनुमानजी के मंगल की सूचना देते हुए शान्त-भाव से जलने लगे ।

तत्रैकं स्तम्भमादाय हत्वा तान् रक्षिणः क्षणात् ।
विचार्य कार्यशेषं स प्रासादाग्राद् गृहाद्गृहम् ।।
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य सन्दीप्तपुच्छेन महता कपिः ।
ददाह लंकामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम् ।।
हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः ।
व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः ।।

(अध्यात्म रा० ५।४।४१, ४२, ४३)

उधर हनुमानजी ने एक खम्भा उखाड़ कर एक क्षण में ही सब रक्षकों को मार डाला और फिर अपना शेष कार्य निश्चित करके उस महल के अग्र भाग से एक घर से दूसरे घर पर छलाँग मारते हुए

अपनी जलती हुई विशाल पूँछ से अटारी, महल और वन्दनवारादि से युक्त पूरी लंका में आग लगा दी। उस समय "हा तात, हा पुत्र, हा नाथ" ऐसे चिल्लाते हुए दैत्य-रमणियाँ चारों ओर फैल गयीं और महलों के शिखर पर भी चढ़ गयीं।

जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं।।
ताकर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।।
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी।।

(मा० ५।२५।३, ४)

हनुमानजी ने एक ही क्षण में सारा नगर जला डाला। केवल विभीषण का घर नहीं जलाया।

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती! जिन सर्वसमर्थ ने अग्नि को वनाया, हनुमानजी उन्हीं के तो दूत हैं। इसलिए वे स्वयं नहीं जले।

तव हनुमानजी ने उलट-पलट कर सारी लंका जला दी और स्वयं समुद्र में कूद पड़े।

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगे ठाढ़ भयउ कर जोरि।।

(मा० ५।२६)

पूँछ बुझाकर और थकावट दूर करके और छोटा-सा रूप धारण करके जानकीजी के सामने आकर खड़े हो गये और विनय करने लगे—

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा।।
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ।।
कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरन कामा।।
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।

(मा० ५।२६।१, २)

हे माता! आप भी मुझे कोई चिह्न दीजिये जैसा कि श्रीरामचन्द्र ने मुझे आपके लिए दिया था।

तव सीताजी ने चूड़ामणि उतार कर दिया। हनुमानजी ने उसे

हर्षपूर्वक ले लिया। सीताजी ने कहा—तुम जा रहे हो। प्रभु से मेरा प्रणाम करके निवेदन करना कि यद्यपि आप सब प्रकार से पूर्णकाम हैं फिर भी दीन-दुखियों पर दया करना तो आपका नियम ही है। अतः हे नाथ! उस विरद को याद करके आप मेरे सिर पर पड़ी हुई इस भारी विपत्ति को दूर कर दीजिये।

मास दिवस महुं नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा।।

(मा० ५।२६।३)

हे तात! यदि एक महीने के भीतर श्रीराम आकर मुझे यहाँ से नहीं छुड़ा ले जायेंगे तो फिर मुझे जीवित नहीं पा सकेंगे।

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह।।

(मा० ५।२७)

हनुमानजी ने जानकीजी को बहुत प्रकार से समझाया और धीरज दिया। तब सीताजी के चरणकमलों में सिर नवाकर हनुमानजी श्रीराम के पास गये।

अहंकार-शून्यता

सीताजी के दर्शन करके हनुमानजी श्रीराम के पास पहुँचे। हनुमानजी ने जो कुछ किया था, वह जामवन्त ने श्रीराम को सुनाया।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियं लाए।।

हनूमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः।।
इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते।
इत्यालिंग्य समाकृष्य गाढं वानरपुंगवम्।।
सार्द्रनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः।

(अध्यात्म रा० ५।५।६०-६२)

श्रीराम ने कहा—हनुमान ! तुमने जो कार्य किया है वह देवताओं से भी होना कठिन है। मैं प्रत्युपकार तो क्या करूँ, मैं अभी तुम्हें अपना सर्वस्व देता हूँ। यह कहकर रघुश्रेष्ठ श्रीराम ने हनुमान जी को खींचकर गाढ़ आलिंगन किया। उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु आये और हृदय में परम प्रेम उमड़ने लगा। फिर उन्होंने पूछा—सीता किस प्रकार रहती हैं और अपने प्राणों की रक्षा कैसे करती हैं ?

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट।।

(मा० ५।३०)

हनुमानजी ने बताया—आपका नाम ही उनका दिन-रात पहरा देने वाला है और आपका ध्यान ही किवाड़ हैं। वे अपने नेत्रों को

चरणों में लगाये रहती हैं, यही ताला है। फिर प्राण कैसे निकल सकते हैं।

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयं लाइ सोइ लीन्ही ।।
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी ।।

(मा० ५।३०।१)

चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि उतार कर दी। श्रीराम ने उसे लेकर हृदय से लगा लिया।

हृदयं स्वयमायातं वैदेह्या इव मूर्तिमत।

(रघुवंशम् १२।६४)

वह मणि पाकर श्रीराम को वैसा ही सुख मिला जैसे कि सीताजी का हृदय ही स्वयं चला आया हो।

हनुमानजी ने फिर कहा—हे नाथ ! दोनों नेत्रों में जल भरकर जनककिशोरी जी ने आपके लिए संदेश भेजा है।

निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति ।।

(मा० ५।३१)

फिर हनुमानजी ने उनकी दशा का वर्णन किया कि एक-एक पल कलप के समान बीतता है। आप तुरन्त चलिये और अपनी भुजाओं के वल से दुष्टों को जीतकर सीताजी को ले आइये।

सीताजी का दुःख सुनकर श्रीराम के कमलनेत्रों में जल भर आया। परन्तु उन्होंने यह पूछा—

बचन कायं मन मम गति जाही। सपनेहुं बूझिअ बिपति कि ताही ।।

(मा० ५।३१।१)

जिसे मन, वचन और शरीर से मेरा ही आश्रय हो, क्या उसे स्वप्न में भी विपत्ति हो सकती है ?

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई ।।
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी ।।

(मा० ५।३१।२)

हनुमानजी ने तुरन्त कहा—हे स्वामी ! विपत्ति तो तभी होती है जब आपका भजन-स्मरण न हो।

श्रीराम बोले—

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्मणि दुष्करे।
कुर्यात् तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ।।

(वा० रा० ६।१।७)

जो सेवक स्वामी के किसी दुष्कर कार्य में नियुक्त होने पर उसे तो पूरा करे ही, साथ ही उसके अनुरूप दूसरे कार्य को भी सम्पन्न करता है, वह उत्तम सेवक होता है।

यो नियुक्तः परं कार्यं न कुर्यान्नृपतेः प्रियम्।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम् ।।

(वा० रा० ६।१।८)

जो किसी कार्य में नियुक्त होकर केवल उतना ही कार्य करता है परन्तु योग्यता और सामर्थ्य होते हुए भी स्वामी के दूसरे प्रिय कार्य नहीं करता वह सेवक मध्यम श्रेणी का होता है।

नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद् यः समाहितः।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम् ।।

(वा० रा० ६।१।९)

जो सेवक अपने स्वामी के किसी कार्य में नियुक्त होकर योग्यता और सामर्थ्य होते हुए भी उसे सावधानी से सम्पन्न नहीं करता वह अधम कोटि का होता है।

तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता।
न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः ।।

(वा० रा० ६।१।१०)

हनुमान ने मेरे एक कार्य में नियुक्त होकर उसके साथ ही दूसरे महत्वपूर्ण कार्यों को भी पूरा किया है और अपने गौरव में भी कमी नहीं आने दी। दूसरों की दृष्टि में अपने आपको छोटा नहीं बनने दिया और सुग्रीव को भी संतुष्ट कर दिया।

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥

(मा० ५।३२)

श्रीराम के वचन सुनकर और उनका प्रसन्न मुख तथा पुलकित अंगों को देखकर हनुमानजी हर्षित हो गये और मेरी रक्षा कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये। कहते हुए श्रीराम के चरणों में गिर पड़े।

श्रीराम ने उनसे पूछा—

त्रिदशैरपि दुर्धर्षा लंका नाम महापुरी।
कथं वीर! त्वया दग्धा विद्यमाने दशानने॥

(हनुमन्नाटक ६।४५)

जहाँ देवताओं की भी पहुँच नहीं है ऐसी राजधानी लंका को रावण के रहते, हे वीर! तुमने कैसे जलाया?

इस पर हनुमानजी ने सहज स्वभाव से रहस्योद्घाटन करते हुए वताया—

निःश्वासेनैव सीताया राजन्! कोपानलेन ते।
दग्धपूर्वा तु सा लंका निमित्तमभवं त्वहम्॥
शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः।
यत्पुनर्लंघितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव॥

(हनुमन्नाटक ६।४३-४४)

हे नाथ! सीताजी की दुःखभरी श्वास से और आपकी क्रोधाग्नि से लंका तो पहले ही जल चुकी थी *मैं तो निमित्तमात्र हो गया।* मेरी सामर्थ्य तो वस एक डाली से दूसरी डाली पर उछलने-कूदने में ही है। जो मैं विशाल समुद्र पार कर गया *वह तो आपका प्रताप था।*

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा ते साखा पर जाई॥
नाघि सिन्धु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बिधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछु मोरि प्रभुताई॥

ता कहं प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभाव बड़वानलहि जारि सकइ खल तूल।।

(मा० ५।३२।३, ४; ५।३३)

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी।।
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी।।

(मा० ५।३३।१)

हे नाथ! *अत्यन्त सुख देने वाली अपनी अचल भगति मुझे कृपा करके दीजिये।* हनुमानजी की ऐसी अत्यन्त सरल वाणी सुनकर श्रीराम ने कहा—ऐसा ही हो।

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना।।
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा।।

(मा० ५।३३।२)

श्री शिवजी ने पार्वती जी से कहा—*जिसने एक बार श्रीराम के स्वभाव को समझ लिया उसे राम-भजन छोड़कर दूसरा कुछ अच्छा नहीं लगता।* स्वामी श्रीराम और सेवक हनुमानजी के इस संवाद को जिसने भलीभाँति अपने चित्त में वसा लिया उसे श्रीराम के चरणों की भक्ति अवश्य रहेगी।

उद्देश्य पर दृष्टि

लक्ष्मण का मेघनाद से युद्ध हुआ। जब मेघनाद को यह लगा कि उसके प्राणों पर संकट आ बना है तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलाई जो लक्ष्मण की छाती में लगी। उन्हें मूर्च्छा आ गई। हनुमानजी उन्हें लेकर श्रीराम के पास पहुँचे! लक्ष्मण को उस दशा में देखकर श्रीराम को बहुत दुःख हुआ। वह बोले—

मोपै तौ न कछू ह्वै आई।
ओर निबाहि भली बिधि भायप, चल्यौ लखन-सो भाई॥
पुर-पितु-मातु सकल सुख परिहरि, जेहि बन-बिपति बंटाई।
ता-संग, हौं सुरलोक, सोक तजि, सक्यौं न प्रान पठाई॥
जानत हौं या उर कठोर-तें, कुलिस कठिनता पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत-कौ, दरकि दरार न जाई॥
तात-मरन, तिय-हरन, गीध-बध, भुज दाहिनी गंवाई।
'तुलसी' मैं सब भांति आपने, कुलहिं कालिमा लाई॥

(गीतावली—लंका/६)

मुझसे तो कुछ भी नहीं बना। अब लक्ष्मण जैसा भाई भी अपने धर्म का पूरा निर्वाह करके चला जा रहा है। जिसने नगर, माता-पिता और सब सुख छोड़कर वन की विपत्ति में पूरा साथ दिया, उसके साथ मैं शोक छोड़कर अपने प्राण भी सुरलोक नहीं भेज सका। ऐसा लगता है कि वज्र भी मेरे हृदय से कठोरता लेकर वज्र बना है इसीलिए लक्ष्मण का स्मरण करने पर इसमें कोई दरार नहीं पड़ पाई। मेरे

कारण ही पिता की मृत्यु हुई, सीता का हरण हुआ, जटायु का वध हुआ और अव यह मेरी दाहिनी भुजा भी जा रही है। इस प्रकार मैंने तो अपने कुल को कलंक ही कलंक लगाया।

तव हनुमानजी वोले—

पातालतः किमु सुधारसमानयामि
निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि।
उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि।
कीनाशपाशमनिशं किमु चूर्णयामि॥

(हनुमन्नाटक १३।१६)

जो हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चंद्रमहिं निचोरि चैल-ज्यौं, आनि सुधा, सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि, अमृत-कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो, तुरत राहु दे तावौं॥
बिबुध-बैद्य बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु अनुग कहावौं।
पटकौं मीच नीच मूषक-ज्यों, सब-को पाप बहावौं।
तुम्हरिहि कृपा, प्रताप तिहारे, नैकु बिलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु 'तुलसी' प्रभु ! जेहि तुम्हरे मन भावौं॥

(गीतावली लंका/८)

स्वामी ! यदि अव आपकी आज्ञा मिले तो जाकर चन्द्रमा को वस्त्र जैसे निचोड़ कर उससे अमृत निकालकर आपके आगे लाकर रख दूँ और तव आपको सिर नवाऊँ। यदि कहिये तो पाताल के सव सर्पों को मारकर वहाँ का अमृत-कुण्ड यहाँ उठाकर ले आऊँ। कहिये तो चौदहों लोक भेद कर सूर्य को वाहर निकालकर और वहाँ राहु को विठा कर सूर्य का निकलना बंद कर दूँ। मुझे तभी अपना दास समझियेगा जव मैं देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार को पकड़ कर यहाँ ले आऊँ। मृत्यु को नीच चूहे की भाँति पटक कर मारूँ जिससे सवके ही पाप कट जायें। प्रभु ! आपकी कृपा और आपके प्रताप से ही ऐसा करने में मुझे तनिक भी विलम्ब न होगा।

अतः स्वामी ! जो कुछ करने से मैं आपको प्रिय लगूँ वही करने की मुझे आज्ञा दीजिये !

जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रहइ को पठई लेना ।।
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता ।।
(मा० ६।५४।४)

जामवंत ने कहा—लंका में सुषेण बैद्य रहता है उसे लिवा लाने के लिए किसी को तुरंत ही भेज दीजिये। यह सुनते ही हनुमानजी छोटा-सा रूप धर कर वहाँ गये और उनको घर समेत तुरंत ही उठा लाये।

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन ।।
(मा० ६।५५)

सुषेण ने पहुँचते ही श्रीराम के चरणकमलों में सिर नवाया और लक्ष्मण के लिए उसने औषधि का नाम और जिस पर्वत पर वह मिलेगी, उसका पता बताया। पवनपुत्र हनुमानजी को आज्ञा हुई कि जाकर तुरंत औषधि ले आइये।

राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी ।।
(मा० ६।५५।१)

श्रीराम के चरणार्विन्दों को हृदय में रखकर और अपना आत्म-बल प्रकट करके हनुमानजी तुरंत चल पड़े।

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ।।
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ ।।
(मा० ६।५७।४)

पता बताये हुए पर्वत पर हनुमानजी पहुँचे परंतु औषधि को पहचान नहीं सके। तब हनुमानजी ने तुरंत पर्वत को ही उखाड़ लिया और उसे लेकर रात ही रात आकाश-मार्ग से दौड़ चले। जब अयोध्या पुरी के ऊपर पहुँचे—

देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि ।।(मा० ६।५८)

भरतजी ने आकाश में एक विशाल स्वरूप को देखकर मन में अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है। उन्होंने अपना धनुष खींच कर विना फर का एक वाण मारा।

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥

(मा० ६।५८।½)

बाण लगते ही हनुमानजी राम, राम, रघुनायक बोलते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए॥

(मा० ६।५८।१)

प्रिय राम-नाम सुनकर भरत उठ दौड़े और बहुत दुखी होकर हनुमानजी के पास पहुँचे और बोले—

जौं मोरें मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला॥

(मा० ६।५८।३)

यदि श्रीराम के चरणकमलों में मेरा मन से, वचन से निष्कपट प्रेम हो और यदि श्री रघुनाथजी मुझ पर प्रसन्न हों तो यह वानर श्रम और पीड़ा से मुक्त हो जाये।

सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥

(मा० ६।५८।४)

यह वचन सुनते ही हनुमानजी "कौशलपति की जय हो, जय हो, जय हो।" कहते हुए उठ बैठे।

कहौ कपि रघुपति कौ संदेस।
कुसल बंधु लछिमन, बैदेही, श्रीपति सकल नरेस॥
जनि पूछौ तुम कुसल नाथ की, सुनौं भरत बलबीर।
बिलख बदन, दुख भरे सिया कैं, हैं जलनिधि के तीर॥
बन में बसत, निसाचर छल करि, हरी सिय मम मात।
ता कारन लछिमन सर लाग्यौ, भए राम बिनु भ्रात॥

यह सुनि कौसिल्या सिर ढोरयौ, सबनि पुहुमि तन जायौ।
त्राहि त्राहि कहि, पुत्र पुत्र कहि, मातु सुमित्रा रायौ।।
धन्य सुपुत्र पिता पन राख्यौ, धनि सुबधू कुल लाज।
सेवक धन्य अंत अवसर जो, आवै प्रभु के काज।।
पुनि धरि धीर कह्यौ, धनि, लछिमन, राम काज जो आवे।
'सूर' जिये तौ जग जस पावै, मरि सुरलोक सिधावै।।

(सूर—रामचरितावली। १७१)

भरत ने पूछा—कपिवर ! श्रीरघुवीरजी का समाचार सुनाओ। जगदीश्वर श्रीराघवेन्द्र, भाई लक्ष्मण और श्रीवैदेहीजी के साथ, कुशल-पूर्वक तो हैं न ? हनुमानजी ने उत्तर दिया—वलवीर भरतजी ! सुनो ! आप मेरे स्वामी की कुशल मत पूछिये। सीताजी के वियोग में उनका शरीर व्याकुल है। वे दुखी हैं। इस समय लंका में समुद्र के किनारे हैं क्योंकि जव वे वन में निवास करते थे तव मेरी माता जानकीजी का राक्षस रावण ने हरण कर लिया। इसी कारण से युद्ध छिड़ गया है और लक्ष्मणजी को वाण लगा है जिससे श्रीराम विना भाई के हुए जा रहे हैं।

यह सुनते ही माता कौसल्या मूर्छित हो गईं। सभी लोग शोका-तुर हो गये। माता सुमित्रा 'त्राहि-त्राहि, हा पुत्र, हा पुत्र' कहकर रोने लगीं। परंतु वोलने लगीं—राम धन्य हैं जिन्होंने अपने पिता के वचन की रक्षा की। उत्तम पुत्र-वधु सीता भी धन्य हैं जिन्होंने कुल की रक्षा रखी। *सेवक भी वही धन्य होता है जो प्राण जाते-जाते भी अपने स्वामी के काम आये।* पुनः धीरज धरके कहने लगीं—मेरा पुत्र लक्ष्मण धन्य है जो राम के काम आया है। यदि वह जीवित रहा तो जगत् में यश पायेगा, अन्यथा सुरलोक जायेगा।

धनि जननी, जो सुभटहि जावे।
भीर परें रिपु कौ दल दलि मलि, कौतुक करि दिखरावै।।
कौसिल्या सौं कहति सुमित्रा, जनि स्वामिनि दुख पावे।
लछिमन जनि हौं भई सपूती, राम काज जो आवै।।

जीवै तो सुख बिलसे जग में, कीरति लोकनि गावे ।
मरै तो मंडल भेदि भानु कौ, सुरपुर जाइ बसावै ।।
लोह गहैं लालच करि जिय कौ, औरौ सुभट लजावे ।।
'सूरदास' प्रभु जीति सत्रु कौं, कुसल छेम घर आवै ।।

(सूर—रामचरितावली । १७२)

तब सुमित्राजी माता कौसल्या से कहने लगीं—आप अपने चित्त में दुखी न हों। लक्ष्मण को जन्म देकर मैं धन्य पुत्रवती हुई यदि वह राम के काम आ जाये। यदि वह जीवित रहेगा, संसार में रहकर सुख भोगेगा और तीनों लोकों में उसकी कीर्ति गाई जायेगी। यदि नहीं बचा तो सूर्य मंडल का भेदन करके देवलोक में निवास करेगा। जो *शस्त्र धारण करके भी अपने प्राणों का लोभ करता है वह दूसरे वीरों को भी लज्जित करता है।* मेरी मंगलकामना है कि श्रीराम शत्रु को जीत कर कुशलपूर्वक घर लौट आयें।

सुनौ कपि, कौसिल्या की बात ।
इहिं पुर जनि आवहिं मम बत्सल, बिनु लछिमनु लघु भ्रात ।।
छांड्यौ राज काज, माता हित, तुव चरननि चित लाइ ।
ताहि बिमुख जीवन धिक रघुपति, कहियो कपि समुझाइ ।।
लछिमन सहित कुसल बैदेहि, आनि राज पुर कीजै ।
नातरु 'सूर' सुमित्रा सुत पर, वारि अपुनपो दीजै ।।

(सूर—रामचरितावली १७३)

माता कौसल्या ने कहा—कपिवर ! मेरी बात सुनो। राम से कह देना कि यदि वह मेरा पुत्र है तो लक्ष्मण के विना इस नगर में नहीं आये। हनुमान ! राम को यह समझाकर कह देना कि जिसने आपके चरणों में चित्त लगाकर राज्य-सुख छोड़ा, माता छोड़ी, उसके विना जीवन को धिक्कार है। इसलिए लक्ष्मण और सीता के साथ ही कुशलपूर्वक लौट कर आये और यहाँ राज्य करे। नहीं तो लक्ष्मण पर अपने आपको निछावर कर दे।

बिनती कहियो जाइ पवनसुत, तुम रघुपति के आगैं।
या पुर जनि आवहु बिनु लछिमन, जननी लाजनि लागैं।।
मारुतसुतहि संदेस सुमित्रा ऐसैं कहि समुझावै।
सेवक जूझि परे रन भीतर, ठाकुर तउ घर आवै।।
जब तें तुम गवने कानन कौं, भरत भोग सब छांडे।
'सुरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, दुख समूह उर गाडे।।

(सूर--रामचरितावली १७४)

माता कौसल्या फिर कहने लगीं—पवनकुमार! तुम राघवेन्द्र से मेरी यह विनती कह देना कि माता की लाज वचाने के लिए वह विना लक्ष्मण के इस नगर में न आये।

तब माता सुमित्रा हनुमानजी को अपना संदेश देते हुए समझाने लगीं—यदि सेवक के युद्ध में प्राण चले जायें तो भी स्वामी घर लौट कर आता ही है। राम से कह देना कि जब से तुम वन को गये हो, यहाँ भरत ने सभी सुखों का भोगना ही छोड़ दिया है। तुम्हारे दर्शन के विना उनके हृदय में दुःखों का समूह वसा हुआ है। अतः तुमको अवश्य ही लौट आना चाहिए।

पवनपुत्र बोल्यौ सतिभाइ।
जाति सिराति राति बातनि में, सुनौ भरत चित्त लाइ।।
श्रीरघुनाथ संजीवनी कारन, मोकौं इहाँ पठायौ।
भयौ अकाज, अर्धनिसि बीती, लक्षिमन काज नसायौ।।
स्यौं परबत सर बैठि पवनसुत हौं प्रभु पै पहुंचाऊं।
'सूरदास' प्रभु पांवरि मम सिर, ईहिं बल भरत कहाऊं।।

(सुर—राम चरितावली १७५)

हनुमानजी की दृष्टि तो अपने उद्देश्य पर जमी हुई थी। उन्होंने कौसल्याजी और सुमित्राजी के संदेश सुनकर भरत से कहा—आप मेरी वात ध्यान से सुनो। वातों में ही रात वीती जा रही है। श्रीराम ने मुझे संजीवनी लाने के लिए भेजा था, उसमें विलम्ब हो रहा है, लक्ष्मण को औषधि पहुँचाने में देर हो रही है।

यह सुनते ही भरत ने कहा—पवनकुमार! तुम पर्वत समेत मेरे वाण पर बैठ जाओ। मैं तुम्हें श्रीराम के पास पहुँचा देता हूँ। क्योंकि श्रीराम की चरणपादुका मेरे मस्तक पर है, उसी के वल से मैं भरत कहलाता हूँ।

राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी।।
तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत।।

(मा० ६।५६।४; ६।६०)

हनुमानजी, श्रीराम के प्रताप का विचार करके, भरत से हाथ जोड़कर बोले—हे नाथ! मैं श्रीराम को और आपके प्रताप को हृदय में रखकर तुरंत पहुँच जाऊँगा। ऐसा कहकर भरतजी को प्रणाम करके और उनकी आज्ञा पाकर हनुमानजी चले।

उधर रात वीती जा रही थी। श्रीराम विलाप करने लगे—

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस बिचारि जियं जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।

(मा० ६।६०।४)

वे बोले—*धन, स्त्री, पुत्र, घर, परिवार, यह सब जगत् में बार-बार मिल जाते हैं परंतु सहोदर भाई नहीं मिलता।* ऐसा विचार कर हे तात! सचेत हो जाओ।

प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए वानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महं बीर रस।। (मा० ६।६१)

यह सुनकर वानर व्याकुल हो गये। इतने में ही हनुमानजी वहाँ आ पहुँचे। मानो करुण रस में वीर रस आ गया हो।

हरषि राम भेंटेऊ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना।।
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई।।
हृदयं लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता।।
कपि पुनि बैद तहां पहुंचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा।।

(मा० ६।६१।१ और २)

श्रीराम ने हर्षित होकर हनुमानजी को हृदय से लगा लिया और कृतज्ञ हो गये। सुषेण ने तुरंत औषधि दी जिससे लक्ष्मण प्रसन्न चित्त उठ बैठे। श्रीराम भाई को हृदय से लगाकर मिले। सब भालू, वानर हर्षित हो गये। हनुमानजी ने वैद्य को जैसे लाये थे, वैसे ही वापस पहुँचा दिया।

अनपेक्षा

रावण-वध और लंका-विजय करके श्रीराम ने हनुमानजी को सीताजी के पास समाचार देने के लिए भेजा। हनुमानजी ने सीताजी से कहा—

मया ह्यलब्धनिद्रेण धृतेन तव निर्जये।
प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ ।।

(वा० रा० ६।११३।११)

श्रीराम ने आपके लिए यह संदेश भेजा है—देवी ! मैंने तुम्हारे लिए जो प्रतिज्ञा की थी उसे निद्रा त्याग कर अथक प्रयत्न करके समुद्र में पुल वाँध कर रावण-वध के द्वारा पूर्ण किया है।

न हि पश्यामि तत् सौम्य पृथिव्यामपि वानर।
सदृशं यत्प्रियाख्याने तव दत्वा भवेत् सुखम् ।।
हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु एतन्नार्हति भाषितम् ।।

(वा० रा० ६।११३।१९-२०)

सीताजी ने कहा—वानरवीर ! सोना, चाँदी, नाना प्रकार के रत्न या तीनों लोकों का राज्य भी इस समाचार की वरावरी नहीं कर सकता। इस भूमंडल में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो इस प्रिय संदेश के अनुरूप हो और तुम्हें देकर मैं संतुष्ट हो सकूँ।

भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकांक्षिणि।
स्निग्धमेवं विधं वाक्यं त्वमेवार्हस्यनिन्दिते ।।

(वा० रा० ६।११३।२२)

हनुमानजी हाथ जोड़कर बोले—पति की विजय चाहने वाली और पति के ही प्रिय एवं हित में सदा संलग्न रहने वाली सती-साध्वी देवि ! आपके मुखारविन्द से ऐसे स्नेहपूर्ण वचन से मैं सब कुछ पा गया ।

अर्थतश्च मया प्राप्ता देवराज्यादयो गुणाः ।
हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थितम् ।।

(वा० रा० ६।११३।२४)

श्रीराम अपने शत्रु का वध करके विजयी हो गये हैं और स्वयं सकुशल हैं इतने में ही मेरे सारे प्रयोजन सिद्ध हो गये । मुझे देवताओं के राज्य आदि और सभी मूल्यवान पदार्थ मिल गये ।

अतिलक्षणसम्पन्नं माधुर्यगुणभूषणम् ।
बुद्धया ह्यष्टांगया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम् ।।

(वा० रा० ६।११३।२६)

सीताजी ने कहा—वीरवर ! तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणों से सम्पन्न है, माधुर्य से भूषित है और बुद्धि के आठों अंगों से अलंकृत है । ऐसी वाणी तुम्हीं बोल सकते हो ।

इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे ।
हन्तुमिच्छामि ताः सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा ।।

(वा० रा० ६।११३।३०)

हनुमानजी ने कहा—माता ! यदि आपकी आज्ञा हो तो इन सभी राक्षसियों को मैं मार डालूँ जो आपको बहुत डराती-धमकाती रही हैं ।

विकृता विकृताकाराः क्रूराः क्रूरकचेक्षणाः ।
इच्छामि विविधैर्वातैर्हन्तुमेताः सुदारुणाः ।।

(वा० रा० ६।११३।३३)

यह सब विकराल, कुरूप और अत्यन्त दारुण हैं । इनकी आँखों और बालों से भी क्रूरता टपकती है । मैं भाँति-भाँति के आघातों द्वारा इन सबको मार डालना चाहता हूँ ।

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया ॥
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद् वानरोत्तम ।
भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च ॥
मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ।
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः ॥

(वा० रा० ६।११३।३८-४०)

सीताजी ने कहा—हनुमान ! ये बेचारी रावण के आश्रय में रहने के कारण पराधीन थी । उसकी आज्ञा से सब कुछ करती थीं । इसलिए अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करने वाली इन दासियों पर क्रोध क्यों हो । मेरा ही भाग्य अच्छा नहीं था और मेरे पूर्व जन्म के दुष्कर्म अपना फल देने लगे थे, इसी से मुझे सब कष्ट प्राप्त हुआ । सभी प्राणी अपने किये हुए शुभ और अशुभ कर्मों का ही फल भोगते हैं । इसलिए महाबाहो ! तुम इन्हें मारने की बात मत कहो । मेरे लिए दैव का ही विधान था ।

प्राप्तव्यं तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम् ।
दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥

(वा० रा० ६।११३।४१)

अपने पूर्व कर्मों के कारण मुझे निश्चित रूप से दुःख भोगना ही था । इसलिए रावण की दासियों का जो भी अपराध हो उसे मैं क्षमा करती हूँ ।

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥

(वा० रा० ६।११३।४४)

श्रेष्ठ पुरुष पापियों के पापकर्म को नहीं अपनाते और बदले में उनके साथ स्वयं पापपूर्ण बर्ताव नहीं करते । अपनी प्रतिज्ञा और सदाचार की रक्षा ही करनी चाहिए । साधु पुरुष उत्तम चरित्र से ही विभूषित होते हैं । सदाचार ही उनका आभूषण है ।

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।।

(वा० रा० ६।११३।४५)

श्रेष्ठ पुरुष को चाहिये कि कोई पापी हो या पुण्यात्मा हो अथवा वध के योग्य अपराध करने वाला ही क्यों न हो, सब पर दया करे; क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जिससे कभी अपराध न हो।

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयं बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत।।

(मा० ६।१०७)

श्रीजानकीजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा—हे पुत्र! तुम्हारे हृदय में समस्त सद्‌गुण बसे रहें और हे हनुमान! कौशलपति श्रीराम लक्ष्मण सहित तुम पर सदा प्रसन्न रहें।

अनन्त सेवा

श्रीराम सीताजी और लक्ष्मण सहित अयोध्या लौट आये। वे अपने साथ वानरों को भी लाये थे, उन सबको विदा किया; विभीषण को भी विदा किया। उसी समय हनुमानजी विनम्र होकर श्रीराम से बोले—

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥

(वा० रा० ७।४०।१६)

महाराज ! आपके प्रति मेरा प्रेम-स्नेह नित्य बना रहे। वीर ! *आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति रहे। अन्यत्र कहीं भी मेरा आन्तरिक अनुराग न हो।*

यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः ॥

(वा० रा० ७।४०।१७)

स्वामी ! इस पृथ्वी पर जब तक रामकथा प्रचलित रहे तब तक निःसंदेह मेरे प्राण इस शरीर में बने रहें।

एवं ब्रुवाणं रामस्तु हनूमन्तं वरासनात्।
उत्थाय सस्वजे स्नेहाद् वाक्यमेतदुवाच ह ॥

(वा० रा० ७।४०।२०)

हनुमानजी की यह विनय सुनकर श्रीराम ने अपने श्रेष्ठ सिंहासन से उठकर उन्हें हृदय से लगा लिया और प्रीतिपूर्वक बोले—

एवमेतत् कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः।
चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका।।
तावत् ते भविता कीर्तिः शरीरे प्यसवस्तथा।
लोकाह्रि यावत्स्थास्यन्ति तावत् स्थास्यन्ति मे कथाः।।

(वा० रा० ७।४०।२१-२२)

कपिश्रेष्ठ ! ऐसा ही होगा; इसमें कोई संशय नहीं है। जव तक संसार में मेरी कथा प्रचलित रहेगी तव तक तुम्हारे शरीर में प्राण भी रहेंगे और तुम्हारी कीर्ति भी अमिट रहेगी। जव तक यह लोक वना रहेगा तव तक मेरी कथाएँ भी प्रचलित रहेंगी।

अपने परमधाम जाते समय श्रीरामचन्द्र ने हनुमानजी से कहा—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर।
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।।

(वा० रा० ७।१०८।३३)

हरीश्वर ! जव तक संसार में मेरी कथाओं का प्रचार रहे तव तक तुम भी मेरी आज्ञा का पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।

एवमुक्तस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना।।
वाक्यं विज्ञापयामास परं हर्षमवाप च।

(वा० रा० ७।१०८।३४)

भगवान श्रीराघवेन्द्र का यह आदेश सुनकर हनुमानजी को अत्यन्त हर्ष हुआ और वे वोले—

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी।।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।

(वा० रा० ७।१०८।३५)

स्वामी ! जव तक संसार में आपकी पावन कथा प्रचलित रहेगी तव तक आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ मैं इस पृथ्वी पर ही रहूँगा।

तत्त्व-ज्ञान

सनकाद्या योगिवर्या अन्ये च ऋषयस्तथा।
प्रह्लादाद्या विष्णुभक्ता हनुमन्तमथाब्रुवन्॥
वायुपुत्र महाबाहो किं तत्वं ब्रह्मवादिनाम्।
पुराणेष्वष्टादशसु स्मृतिष्वष्टादशस्वपि॥
चतुर्वेदेषु शास्त्रेषु विद्यास्वाध्यात्मिकेऽपि च।
सर्वेषु विद्यादानेषु विघ्नसूर्येशशक्तिषु।
एतेषु मध्ये किं तत्वं कथय त्वं महाबल॥

(रामरहस्योपनिषद् १।२-४)

ऋषिगण, प्रह्लादादि, भक्तगण सनकादि ज्ञानियों और योगियों ने हनुमानजी से जिज्ञासापूर्वक पूछा—महावीर पवनकुमार ! चारों वेदों, छहों शास्त्रों, अठारह स्मृतियों, अठारह पुराणों, सभी विद्याओं और आध्यात्मिक ग्रन्थों में किस तत्त्व का उपदेश हुआ है ? ब्रह्मवादी किस तत्त्व को यथार्थ सत्य मानते हैं या ब्रह्म-रूप समझते हैं ? संपूर्ण विद्याओं के दान में और गणेशजी में, सूर्य में, श्री शिवजी में और शक्ति में, इन सब में यथार्थ तत्त्व क्या है ? महावीर ! हम सब पर कृपा करके उस तत्त्व का निरूपण कीजिये।"

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्॥

(श्रीरामरहस्योपनिषद् १।६)

हनुमान ने कहा—*श्रीराम ही ब्रह्म हैं, श्रीराम ही परम तप-*

स्वरूप हैं, श्रीराम ही परमतत्व हैं और श्रीराम ही तारक ब्रह्म हैं।

केवलं रामनामैव सदा यज्जीवनं मुने।
सत्यं वदामि सर्वस्वमिदमेकं सदा मम।।

एकमात्र श्रीराम नाम ही मेरा जीवन है। मैं सत्य कहता हूँ कि सदा-सर्वदा श्रीराम नाम ही मेरा एकमात्र सर्वस्व है।

हे जिह्वे जानकीजानेर्नाम माधुर्यमण्डितम्।
भजस्व सततं प्रेम्णा चेद्वांछसि हितं स्वकम्।।
जिह्वे श्रीरामसंलापे विलम्बं कुरुषे कथम्।
वृथा नायाति ते किंचिद्विना श्रीनामसुन्दरम्।।

हे जिह्वे! यदि तू अपना कल्याण चाहती है तो श्रीजानकी-जीवन का मधुरातिमधुर 'राम' नाम निरंतर रटती रह। हे रसने! तू श्रीराम नाम का जप करने में क्यों देर कर रही है। मधुमय श्रीराम नाम के उच्चारण के बिना तेरा एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिए।

सेतुबन्ध के समय नल-नील को उपदेश करते हुए हनुमानजी ने कहा—

एकतः सकला मन्त्रा एकतो ज्ञानकोटयः।
एकतो रामनाम स्यात् तदपि स्यान्न वै समम्।।
देशकालक्रियाज्ञानादनपेक्ष्यः स्वरूपतः।
अनन्तकोटिफलदो राममन्त्रो जगत्पतेः।।

यदि तुला के एक पलड़े पर कोटि-कोटि ज्ञान आदि साधनों के फल को तथा सभी महामंत्रों को रखा जाये और दूसरे पलड़े पर केवल श्रीराम नाम को रखा जाये तो वे सब मिलकर भी श्रीराम नाम की तुलना नहीं कर सकते। अन्य साधनों जैसी देश-काल की पवित्रता या अनुष्ठान आदि क्रियाओं और ज्ञान की अपेक्षा श्रीराम नाम की आराधना में नहीं होती। श्रीराम नाम का जप अनन्त कोटि फल प्रदान करता है।

ये जपन्ति सदा स्नेहान्नाम मांगल्यकारणम्।
श्रीमतो रामचन्द्रस्य कृपालोर्मम स्वामिनः।।
तेषामर्थं सदा विप्र प्रदाताहं प्रयत्नतः।
ददामि वांछितं नित्यं सर्वदा सौख्यमुत्तमम्।।

श्रीराम नाम जापक के लिए हनुमानजी कल्पवृक्ष बनकर सबके सब मनोरथ सिद्ध कर देते हैं। हनुमानजी ने कहा—

जो भी मेरे स्वामी करुणानिधान श्रीराम के मंगलकारी नाम का सदा प्रेमपूर्वक जाप करते हैं उनके लिए मैं प्रयत्नपूर्वक प्रदाता बना रहता हूँ और उनको अभिलाषा पूर्ण करते हुए उन्हें उत्तम सुख देता रहता हूँ।

श्रीराम नाम रटना

राम बाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर॥१॥
राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहु, जौ चाहसि उजियार॥२॥
रामनाम को अंक है, सब साधन है सून।
अंक गये कछु हाथ नहिं, अंक रहे दसगून॥३॥
राम नाम को कल्पतरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो भाँग ते, तुलसी तुलसीदास॥४॥
राम नाम जपि जीह जन, भये सुकृत सुखसालि।
तुलसी यहाँ जो आलसी, गयो आज की कालि॥५॥
राम नाम सुमिरत सुजस, भाजन भयो कुजाति।
कुतरु कुसुर पुर राज मग, लहत भुवन विख्याति॥६॥
राम नाम अवलंब विनु, परमारथ की आस।
बरसत वारिद बूंद गहि, चाहत चढ़न अकास॥७॥
राम नाम वर बरन जग, सावन भादौं मास।
वर्षा ऋतु रघुपति भगति, तुलसीदास सुदास॥८॥
राम नाम नरकेसरी, कनक कसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालहिं दलि सुरसाल॥९॥
राम नाम कलि काम तरु, सकल सुमंगलकन्द।
सुमिरत करतलसिद्धि सब, पग पग परमानन्द॥१०॥

राम नाम कलि कामतरु, राम भगति सुरधेनु।
सकल सुमंगल मूलजग, गुरुपद पंकज रेनु ॥११॥
राम नाम पर राम तें, प्रीति प्रतीति भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल, सगुन सुमंगल कोस ॥१२॥
राम नाम सब धर्ममय, जानत तुलसीदास।
यथाभूमि वस बीज में, नखत निवास अकास ॥१३॥
राम नाम नित कहत हर, गावत बेद पुरान।
हरन अमंगल अघ अखिल, करन सकल कल्यान ॥१४॥
राम नाम सुमिरत मिटहिं, तुलसी कठिन कलेस।
स्वारथ सुख सपनेहु अगम, परमारथ परवेस ॥१५॥
राम नाम की लूट है, लूटी जाय सो लूट।
अंतकाल पछतायगो, प्राण जायेंगे छूट ॥१६॥
राम नाम कहवो करौ, जब लगि घट में प्रान।
कवहूँ दीन दयालु के, भनक परैगी कान ॥१७॥
राम नाम रति राम गति, राम नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, दुहुं दिसि तुलसीदास ॥१८॥
राम भरोसो, राम बल, राम-नाम विस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, माँगत तुलसीदास ॥१९॥
राम प्रेम बिनु दूबरो, राम प्रेम ही पीन।
रघुवर कवहुँक करहुगे, तुलसी ज्यों जल मीन ॥२०॥
राम सनेही, राम गति, राम चरन रति जाहि।
तुलसी फल जग जनम को, दियो विधाता ताहि ॥२१॥
राम दूरि माया बढ़ति, घटति जान मन माँह।
भूरि होति रवि दूरि लखि, सिर पर पग तर छाँह ॥२२॥
राम भरत लछिमन ललित, सत्रु-समन सुभ नाम।
सुमिरत दसरथ सुवन सब, पूजहिं सब मनकाम ॥२३॥
राम नगरिया राम की, बसे गंगा के तीर।
अचलराज महाराज को, चौकी हनुमंत वीर ॥२४॥

श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये

तीसरा भाग
स्तुति

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकांजलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

जहाँ-जहाँ श्री रघुनाथजी का कीर्तन होता है वहाँ-वहाँ हाथ जोड़े हुए नतमस्तक, नेत्रों में प्रेमाश्रु भरे हुए खड़े रहने वाले राक्षसों के नाशक श्रीहनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूँ।



बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगता।
सुदार्ढ्यं वाक्स्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणाद् भवेत् ॥

श्री हनुमानजी का स्मरण करने से बुद्धि, बल, यश, धैर्य, निर्भयता, आरोग्य, सुदृढ़ता और वाक्पटुता प्राप्त होती है।

श्री हनुमान-स्तुति

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ।।

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।

उल्लंघ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्नि जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लंका नमामि तं प्रांजलिरांजनेयम् ।।

श्रीहनुमानजी का श्रीविग्रह

राम माथ, मुकुट राम, राम सिर, नयन राम,
राम कान, नासा राम, ठोढ़ी राम-नाम है।
राम कंठ, कंध राम, राम भुजा बाजूबंद,
राम हृदय अलंकार, हार राम-नाम है॥
राम उदर, नाभि राम, राम कटी, कटी-सूत,
राम बसन, जंघ राम, जानु-पैर राम-नाम है।
राम मन, बचन राम, राम गदा, कटक राम,
मारुति के रोम रोम व्यापक राम-नाम है॥

कीर्तन

श्रीराम जय राम जय जय राम। श्रीराम जय राम जय जय राम॥
श्रीराम जय राम जय जय राम। श्रीराम जय राम जय जय राम॥
स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। राम नमामि नमामि नमामी॥
मन क्रम वचन राम पद नेहा। राम नमामि नमामि नमामी॥
सखा परम परमारथ एहू। राम नमामि नमामि नमामी॥
मन क्रम वचन रामपद नेहू। राम नमामि नमामि नमामी॥
श्रीराम जय राम जय जय राम। श्रीराम जय राम जय जय राम॥
श्रीराम जय राम जय जय राम। श्रीराम जय राम जय जय राम॥

श्री हनुमान-द्वादश-नाम सिद्धि

हनुमानञ्जीनीसुनुर्वायुपुत्रो महाबलः।
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः ॥१॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः।
लक्ष्मणप्राणदाताश्च दशग्रीवस्य दर्पहा ॥२॥

१. हनुमान।
२. अंजीनीसुनु—अंजनी के पुत्र।
३. वायुपुत्र—वायु देवता के पुत्र।
४. महावल—अत्यन्त शक्तिशाली।
५. रामेष्ट—श्रीरामचन्द्र के प्रिय।
६. फाल्गुनसख—अर्जुन के मित्र।
७. पिंगाक्ष—भूरे नेत्र वाले।
८. अमित विक्रम—अपार वलशाली।
९. उदधिक्रमण—समुद्र को लाँघने वाले।
१०. सीता-शोक-विनाशन—सीताजी के शोक का नाश करने वाले।
११. लक्ष्मण प्राणदाता—संजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मणजी को जीवित करने वाले।
१२. दशग्रीवदर्पहा—रावण के घमण्ड को दूर करने वाले।

महात्म्य

एवं द्वादश नामानि कपीन्द्रस्य महात्मनः।
स्वापकाले प्रबोधे च यात्राकाले च यः पठेत् ।।३।।
तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत्।
राजद्वारे गह्वरे च भयं नास्ति कदाचन ।।४।।

इन १२ नामों को लेने से श्रीहनुमानजी की स्तुति हो जाती है। ये नाम उनके गुणों के द्योतक हैं।

रात्रि में सोने के पूर्व या प्रातःकाल जागने पर या यात्रा पर जाते समय ऊपर लिखे नामों (श्लोक १ और २) द्वारा जो स्तुति करता है उसके भय दूर हो जाते हैं और सब प्रकार के संकट मिट जाते हैं।

श्री हनुमान बाहुक

सिंधु-तरन, सिय-सोच-हरन, रबि-बालबरन-तनु ।
भुज बिसाल, मूरति कराल कालहुको काल जनु ।।
गहन-दहन-निरदहन-लंक निःसंक, बंक-भुव ।
जातुधान-बलवान-मान-मद-दवन पवनसुव ।।
कह तुलसिदास सेवत सुलभ, सेवक हित संतत निकट ।
गुनगनत, नमत, सुमिरत, जपत, समन सकल-संकट-बिकट ।।१।।

हे पवनकुमार श्रीहनुमानजी ! आप समुद्र को लाँघकर श्रीसीताजी के शोक को दूर कर डालने वाले हैं, आपका शरीर उदयकाल के सूर्य के समान लाल रंग का है, आपकी भुजाएँ विशाल हैं, रुद्रावेश में आपकी मूर्ति काल के भी काल जैसी भयंकर है, आपने न जलाई जा सकने वाली लंका को भौंहें टेढ़ी करके निःसंकोच भस्म कर डाला तथा राक्षसों के अभिमान और गर्व का नाश कर दिया । (गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं) हे श्रीहनुमानजी ! आपकी जो सेवा करता है उसे आप सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं और उसका हित करने के लिए उसके निकट रहते हैं । आपका गुणगान करने से, आपको प्रणाम करने से, आपका ध्यानपूर्वक स्मरण करने से और आपका नाम जपने से सारे भयानक संकटों का नाश हो जाता है ।

स्वर्न-सैल-संकास कोटि-रबि-तरुन-तेज-घ ।
उर बिसाल, भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन ।।
पिंग नयन, भृकुटी कराल रसना दसनानन ।
कपिस केस, करकस लंगूर, खल-दल-बल-भानन ।।

कह तुलसिदास बस जासु उर मारुतसुत मूरति बिकट।
संताप पाप तेहि पुरुष पहिं सपनेहुँ नहिं आवत निकट ।।२।।

हे श्री मारुति ! आपका शरीर स्वर्ण-शैल (सुमेरु पर्वत) जैसा सुनहरा है और दोपहर के सूर्य के तेज से करोड़ों गुना तेजस्वी है, आपकी छाती विशाल है, आपकी भुजाएँ अत्यन्त विशाल हैं, आपके नाखून और शरीर वज्र जैसे हैं, केश भूरे हैं, पूँछ कठोर है, नेत्र पीले हैं और भयंकर भौंहें, दाँत, जीभ और मुख दुष्टों के बल को नष्ट कर डालते हैं। (तुलसीदासजी कहते हैं) हे पवनकुमार हनुमानजी ! आपकी विशाल मूर्ति जिसके हृदय में आ जाती है उसके पास दुःख या पाप स्वप्न में भी नहीं आ पाते।

झूलना

पंचमुख-छमुख-भृगुमुख्य भट-असुर-सुर,
सर्व-सरि-समर समरत्थ सूरो।
बांकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली,
बेद बंदी बदत पैजपूरो ।।
जासु गुनगाथ रघुनाथ कह, जासु बल
बिपुल-जल-भरित जग-जलधि झूरो।
दुवन-दल-दमनको कौन तुलसीस है
पवनको पूत रजपूत रूरो ।।३।।

हे हनुमानजी ! आप ऐसे शूरवीर हैं कि श्री शिवजी, स्वामी कार्तिकेयजी, परशुरामजी एवं सब देव और दैत्यों से भी युद्ध करने में समर्थ हैं। आप दृढ़ प्रतिज्ञा वाले, यशस्वी योद्धा और कीर्तिमान हैं। वेद भी भाट बनकर आपके सुयश का निरूपण करते हैं। स्वयं श्रीराम ने अपने श्रीमुख से आपके गुणों की कथाएँ कहीं। आपके अगाध पराक्रम से संसार रूपी अपार समुद्र सूख जाता है। तुलसीदास के ऐसे स्वामी पवनपुत्र हनुमानजी ! आप जैसा कोई अन्य नहीं है जो दीनों के दुःख रूपी राक्षसों का नाश करने में समर्थ हो।

घनाक्षरी

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन,
क्रमको न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो॥
कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर विधि
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो।
बल कैधौं बीररस, धीरज के, साहस कै,
तुलसी सरीर धरे सबनिको सार सो॥४॥

हे हनुमानजी ! आप भगवान सूर्य के पास विद्या पढ़ने पहुँचे। सूर्यदेव ने सोचा कि यह तो बाल-क्रीड़ा कर रहे हैं, यह क्या पढ़ेंगे। ऐसा सोचकर वह पढ़ाने में टाल करने लगे। तब आपने सूर्य की ओर मुँह करके अपने पैर पीठ की ओर कर लिये और बालकों के खेल के समान पढ़ते हुए चलने लगे। आपके पढ़ने में कोई भी भूल नहीं होती थी। (तुलसीदासजी कहते हैं) यह आश्चर्यजनक खेल देखकर इन्द्र आदि लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु और शिव आश्चर्यचकित रह गए और उन सब के चित्त में यह भाव आया कि क्या स्वयं बल या वीररस या धैर्य या साहस, या इन सबके समूह का सार, शरीर धारण करके आया है ?

भारत में पारथके रथकेतु कपिराज,
गाज्यो सुनि कुरुराज दल हलबल भो।
कह्यो द्रोन भीषम समीरसुत महाबीर,
बीर-रस-बारि-निधि जाको बल जल भो।
बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु लागि,
फलंग फलांगहूतें घाटि नभतल भो।
नाइ-नाइ माथ जोरि-जोरि हाथ जोधा जोहैं,
हनुमान देखे जगजीवनको फल भो॥५॥

हे कपिराज हनुमानजी ! महाभारत के युद्ध में अर्जुन के रथ की पताका पर विराजमान थे। आपने ऐसा गर्जन किया कि जिसे सुनते ही दुर्योधन की सेना में खलवली उत्पन्न हो गयी। इस पर द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह ने कहा—"ये महावली हनुमान हैं जिनका वल अथाह है, जैसे वीररस का समुद्र हो। उन्होंने अपने वानरी स्वभाव से जव पृथ्वी से सूर्य तक की कुदान की तो वह एक पग से भी कम निकली।" इस पर दुर्योधन की सेना के योद्धा आपको नतमस्तक होकर और हाथ जोड़े हुए देखते रहे और उस दर्शन की झाँकी में सव ने अपने जीवन को कृतकृत्य माना।

गोपद पयोधि करि, होलिका ज्यों लाई लंक,
निपट निसंक परपुर गलबल भो।
द्रोन-सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर,
कंदुक-ज्यों कपिखेल बेल कैसो फल भो॥
संकटसमाज असमंजस भो रामराज,
काज जुग-पूगनिको करतल पल भो।
साहसी समत्थ तुलसीको नाह जाकी बांह,
लोकपाल पालनको फिर थिर थल भो॥६॥

हे हनुमानजी ! आगे भीष्म पितामह ने कहा—"हनुमानजी वड़े समर्थ और साहसी हैं। उन्होंने समुद्र को ऐसी सुगमता से लाँघ लिया जैसे गाय के खुर को। उन्होंने निर्भीक होकर लंका जैसी सुरक्षित नगरी को होलिका के समान जला डाला जिससे वहाँ हाय-हाय मच गयी। लक्ष्मणजी को शक्ति लगने पर जव श्रीराम के पूरे दल में संकट छा गया था और सव असमंजस में पड़े थे, उस अवसर पर हनुमानजी लंका से हिमालय गये। उन्होंने द्रोणाचल जैसे विशाल पर्वत को खेल ही खेल में उखाड़ लिया और उससे ऐसे खेलने लगे जैसे बेल-फल के समान एक हल्का-सा गेंद हो और संजीवनी बूटी लिये हुए सूर्योदय से पूर्व लंका लौट आये। जिस कार्य में एक युग लगना चाहिए था उसे कुछ क्षणों में ही कर दिखाया। जव रावण ने लोकपालों को

बंदी कर लिया था तव यह हनुमानजी की भुजाओं के ही वल का प्रताप था कि उन्होंने फिर से लोकपालों को छुड़ाकर उन्हें स्वर्ग में वसाया था।"

कमठकी पीठि जाके गोड़निकी गाड़ैं मानो
नापके भाजन भरि जलनिधि-जल भो।
जातुधान-दावन परावनको दुर्ग भयो,
महामीनबास तिमि तोमनिको थल भो॥
कुंभकर्न - रावन - पयोदनाद - ईंधनको
तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो।
भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान-
सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो॥७॥

हे पवनकुमार! भीष्म पितामह ने आगे कहा—"समुद्र कूदने पर हनुमानजी के पाँव से कच्छप की पीठ में गड्ढा हो गया जिसमें समुद्र का सारा जल भरकर समुद्र के नापने का पात्र हुआ। राक्षसों का नाश करते समय समुद्र दुर्ग वन गया जिससे कि राक्षस भाग न सकें और वह दुर्गरूपी समुद्र वड़े-वड़े मत्स्यों के रहने का स्थान वन गया। रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद को जलाने के लिए हनुमानजी के प्रताप ने प्रचंड अग्नि वनकर उनको जला डाला। मैं समझता हूँ कि हनुमानजी जैसा वलवान तीनों लोकों में न तो हुआ, न है और न होगा।"

दूत रामरायको, सपूत पूत पौनको, तू
अंजनीको नंदन प्रताप भूरि भानु सो।
सीय-सोच-समन, दुरित-दोष-दमन,
सरन आये अवन, लखनप्रिय प्रान सो॥
दसमुख दुसह दरिद्र दरिबेको भयो,
प्रकट तिलोक ओक तुलसी निधान सो।
ज्ञान-गुनवान बलवान सेवा सावधान,
साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो॥८॥

हे हनुमानजी! आप पवनदेव और अंजनीदेवी के सुयोग्य पुत्र

और महाराजा रामचन्द्र के दूत हैं। आपका प्रताप अनेक सूर्यों के समान है। आपने सीताजी का शोक मिटाया। पाप और दोष को आप नष्ट करने वाले हैं और शरणागत की रक्षा करते हैं। आप लक्ष्मण को प्राणों के समान प्यारे हैं। आप रावणरूपी असहनीय दारिद्रय का नाश करने के लिए तीनों लोकों में धनरूपी कोष हैं। आप ज्ञानी, गुणवान, वलवान, परहितकारी और अपने स्वामी श्रीराम की सेवा में सजग रहने वाले हैं। ऐसे आप हनुमानजी का मैं सदा हृदय में ध्यान करूँ।

दवन-दुवन-दल भुवन-बिदित बल,
बेद जस गावत बिबुध बंदीछोरको।
पाप-ताप-तिमिर तुहिन बिघटन-पटु,
सेवक-सरोरुह सुखद भानु भोरको॥
लोक-परलोकतें बिसोक सपने न सोक,
तुलसीके हिये है भरोसो एक ओरको।
रामको दुलारो दास बामदेवको निवास,
नाम कलि-कामतरु केसरी-किसोरको॥६॥

हे हनुमानजी ! शत्रुओं की सेना नष्ट करने में आपका पराक्रम सव लोकों में विख्यात है। देवताओं को कारागृह से छुड़ाने वाले, आपका वेद यशगान करते हैं। आप अंधकाररूपी पाप और पालेरूपी कष्ट का नाश कर डालने में प्रवीण हैं। अपने सेवकों को ऐसा सुख देते हैं जैसे प्रातःकाल का सूर्य कमल को। आप श्रीराम के दुलारे हैं, शिव के अवतार हैं, कलियुग में आपका नाम केसरी-किशोर सव मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला है। तुलसीदास जी के हृदय में एकमात्र आपका भरोसा है। इसलिए स्वप्न में भी लोक या परलोक से सर्वथा निश्चिन्त हैं, शोकरहित हैं।

महाबल-सीम, महाभीम, महाबानइत,
महाबीर बिदित बरायो रघुबीर को।
कुलिस-कठोरतनु जोरपरै रोर रन,
करुना-कलित मन धारमिक धीरको।

दुर्जनको कालसो कराल पाल सज्जन को
सुमिरे हरनहार तुलसीकी पीरको।
सीय-सुखदायक दुलारो रघुनायकको,
सेवक सहायक है साहसी समीरको ॥१०॥

हे हनुमानजी ! आप पराक्रम की सीमा, अत्यन्त शक्तिशाली, श्री रघुवीर के मनोनीत महान् योद्धा, महावीर हैं। वज्र के समान आपका कठोर शरीर सामने आते ही रणस्थल में कोलाहल मच जाता है। आपका धर्म और धीर से परिपूर्ण मन करुणा से ओतप्रोत रहता है। दुष्टों के लिए आप काल के समान भयंकर हैं और सज्जनों की रक्षा करते हैं। आपने सीताजी को श्रीराम का संदेश देकर सुखी किया। आप श्रीरघुनाथजी के दुलारे हैं। आप सेवकों की सदा सहायता करते हैं, आप बड़े साहसी हैं, आपका स्मरण करते ही आप तुलसीदास की पीड़ा को दूर करने वाले हैं।

रचिबेको बिधि जैसे, पालिबेको हरि, हर
मीच मारिबेको, ज्याइबेको सुधापान भो।
धरिबेको धरनि, तरनि तम दलिबेको,
सोखिबे कृसानु, पोषिबेको हिम-भानु भो ॥
खल-दुख-दोषिबेको, जन-परितोषिबेको,
मांगिबो मलीनताको मोदक सुदान भो।
आरतकी आरति निाविरबेको तिहूँ पुर,
तुलसीको साहेब हठीलो हनुमान भो ॥११॥

हे हनुमानजी ! जिस प्रकार सृष्टि की रचना करने के लिए ब्रह्मा, जगत् का पालन करने के लिए विष्णु और शिव प्रसिद्ध हैं, जैसे मारने के लिए मृत्यु, जीवनदान के लिए अमृत, सुखाने के लिए अग्नि, पोषण करने के लिए सूर्य और चंद्रमा, दुःख देने के लिए दुष्ट, सुख देने के लिए संतजन, याचकतारूपी मलिनता को मिटाने के लिए दान प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार तुलसीदास के हठीले हनुमानजी ! आप तीनों लोकों में दुखियों की विपत्ति दूर करने के लिए प्रसिद्ध हैं।

सेवक स्योकाई जानि जानकीस मानै कानि,
सानुकूल सूलपानि नवै नाथ नाँकको।
देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ,
बापुरे बराक कहा और राजा राँकको॥
जागत सोवत बैठे पागत बिनोद मोद,
ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आँकको।
सब दिन रूरो परै पूरो जहाँ-तहाँ ताहि,
जाके है भरोसो हिये हनुमान हाँकको॥१२॥

हे हनुमानजी ! जिसके हृदय में आपकी कृपा और रक्षा का भरोसा रहता है वह श्रीराम को भी प्रिय होता है। शिवजी भी उस पर प्रसन्न रहते हैं। स्वर्ग के राजा इन्द्र, सभी देवी-देवता और दानव उसका आदर करते हैं। फिर भला छोटे-छोटे राजा-महाराजा और अन्य, जो उनके सामने रंक ही हैं, क्या कर सकते हैं ? सोते-जागते, बैठते, चलते-फिरते या हँसी-विनोद में भी उसका कोई अनिष्ट नहीं कर सकता। उसका तो सब दिनों में और सब स्थानों में कार्य सिद्ध होता है।

सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि,
लोकपाल सकल लखन राम जानकी।
लोक परलोकको बिसोक सो तिलोक ताहि,
तुलसी तमाइ कहा काहू बीर आनकी॥
केसरी किसोर बंदीछोरके नेवाजे सब,
कीरति बिमल कपि करुनानिधानकी।
बालक-ज्यों पालिहैं कृपालु मुनि सिद्ध ताको,
जाके हिये हुलसति हाँक हनुमानकी॥१३॥

हे हनुमानजी ! जिसके हृदय में आपकी हाँक से आनन्द रहता है उस पर श्रीराम, जानकी, समस्त लोकपाल, भगवान शंकर, पार्वती और उनके गण आदि, सब प्रसन्न रहते हैं। वह लोक-परलोक से निश्चिन्त रहता है। उसे त्रैलोक में किसी अन्य वीर का आश्रय नहीं ताकना पड़ता। सब मुनि और सिद्धजन उस पर कृपा करके बालक के

समान पालन करते हैं। ऐसे केसरीनंदन, करुणानिधान, बंदीछोड़ आप हनुमानजी की निर्मल कीर्ति है।

करुना निधान, बलबुद्धि के निधान, मोद-
महिमानिधान, गुन-ज्ञान के निधान हौ।
बामदेव-रूप, भूप रामके सनेही नाम
लेत देत अर्थ धर्म काम निरबान हौ॥
आपने प्रभाव, सीतानाथ के सुभाव सील,
लोक-बेद-बिधिके बिदुष हनुमान हौ।
मनकी, बचनकी करमकी तिहूँ प्रकार,
तुलसी तिहारो तुम साहेब सुजान हौ॥१४॥

हे हनुमानजी ! आप करुणानिधान हैं, वल और बुद्धि के धाम हैं, आनन्द, महिमा, गुण और ज्ञान के निधान हैं, आप शंकरजी के स्वरूप और महाराजा रामचन्द्र के प्रिय हैं, आपके नाम अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष देने वाले हैं, आप लोक-रीति के और वेद-विधि के ज्ञानी हैं। अपनी शक्ति लगाकर अपने आश्रितों के दुःखों को दूर करने वाले हैं। मन, वचन और कर्म से यह तुलसीदास आपका ही है और आप इसके प्रवीण स्वामी हैं।

मनको अगम, तन सुगम किये कपीस,
काज महाराजके समाज साज साजे हैं।
देव-बंदीछोर रनरोर केसरीकिसोर,
जुग जुग जग तेरे बिरद बिराजे हैं॥
बीर बरजोर, घटि जोर तुलसी की ओर
सुनि सकुचाने साधु खलगन गाजे हैं।
बिगरी संवार अंजनीकुमार कीजे मोहिं,
जैसे होत आये हनुमानके निवाजे हैं॥१५॥

हे अंजनीकुमार, हे केसरीनन्दन ! आपने महाराज श्रीराम के ऐसे कार्य सुगमता से कर डाले, जो मन से भी अगम थे। आपने देवताओं को कारागार से मुक्त किया। आप रणभूमि में कोलाहल मचा देते हैं।

आपकी ऐसी कीर्ति संसार में युग-युग में गाई जाती है। ऐसे प्रचंड पराक्रमी वीर होते हुए आपका वल तुलसी की ओर घट गया, ऐसा समझकर साधु लोग उदास हो गये हैं और दुष्ट लोग प्रसन्न होकर शोर कर रहे हैं। आप मेरी भी उसी प्रकार से विगड़ी वना दीजिये जिस प्रकार आपके कृपा-पात्रों की वनती आयी है।

सवैया

जानसिरोमनि हौ हनुमान सदा जनके मन बास तिहारो।
ढारो बिगारो मैं काको कहा केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो।।
साहेब सेवक नाते ते हातो कियो सो तहां तुलसीको न चारो।
दोष सुनाये तें आगेहुँको होशियार ह्वै हों मन तो हिय हारो।।१६।।

हे हनुमानजी ! आप ज्ञान-शिरोमणि हैं और सेवकों के हृदय में आप सदा वसे रहते हैं। मैंने किसी का क्या गिराया या क्या विगाड़ा है जिसके कारण आप मुझसे रूठे हुए हैं। मैं तो आपका ही हूँ। स्वामी-सेवक का नाता होते हुए आपने मुझे दूर कर रखा है तो उसमें तुलसी का कोई वश नहीं है। परन्तु मुझे मेरा दोष तो वता दीजिए जिससे मैं आगे के लिए सावधान हो जाऊँ। मैं निरुत्साह हो गया हूँ।

तेरे थपे उथपै न महेस, थपै थिरको कपि जे घर घाले।
तेरे निवाजे गरीबनिवाज बिराजत बैरिनके उर साले।।
संकट सोच सबै तुलसी लिये नाम फटै मकरीके-से जाले।
बूढ़ भये बलि, मेरिहि बार, कि हारि परे बहुतै नत पाले।।१७।।

हे कपीश्वर, आपने जिसको बसाया उसे महेश्वर भी नहीं उजाड़ सकते और जिसे आपने उजाड़ा उसे भला कौन वसा सकता है ! हे दीनानाथ ! आपने जिन पर कृपा की उनके शत्रुओं के हृदय में पीड़ा रहती है। आपका नाम लेने से सारे संकट और शोक मकड़ी के जाले की तरह अनायास ही नष्ट हो जाते हैं। तब मेरे संकट दूर करने में क्या संकोच है ! क्या आप बूढ़े हो गए हैं या बहुतों का पालन करते-करते थक गए हैं ?

सिंधु तरे, बड़े बीर दले खल, जारे हैं लंकसे बंक मवासे।
तैं रन-केहरि केहरिके बिदले अरि-कुंजर छैल छवा से।।
तोसों समत्थ सुसाहेब सेइ सहै तुलसी दुख-दोष दवा से।
बानर-बाज बढ़े खल-खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से।।१८।।

हे हनुमानजी ! आपने समुद्र लाँघा और बड़े-बड़े वीर राक्षसों को मार डाला और लंका जैसे विकट दुर्ग को जलाया। रण में आप शत्रुओं को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं जैसे शेर पशुओं के बच्चों को। आपके समान समर्थ और श्रेष्ठ स्वामी की सेवा करते हुए भी तुलसी-दास दुःख और दोष की अग्नि में क्यों जला करे ! दुःख रूपी पक्षी बहुत बढ़ गए हैं, आप उन्हें नष्ट क्यों नहीं कर डालते ?

अच्छ-बिमर्दन कानन-भानि दसानन आनन भा न निहारो।
बारिदनाद अकंपन कुंभकरन्न-से कुंजर केहरि-बारो।।
राम-प्रताप-हुतासन, कच्छ, बिपच्छ, समीर समीरदुलारो।
पापतें, सापतें, ताप तिहूं तें सदा तुलसी कहं सो रखवारो।।१९।।

हे हनुमानजी ! आपने अक्षकुमार का वध कर डाला, आपने अशोक वाटिका का विध्वंस किया और रावण के मुख तेज की कोई परवाह नहीं की। आपने हाथियों जैसे मेघनाद, अकंपन और कुम्भ-करण के मद को शेर बनकर चूर-चूर कर दिया। शत्रुरूपी कच्छ के लिए श्रीराम का प्रताप अग्नि के समान है जिसको धधकाने के लिए आप पवनरूप हैं। हे हनुमानजी ! आप ही तुलसीदास को सदा पाप, शाप और त्रिताप से बचाने में समर्थ हैं।

घनाक्षरी

जानत जहान हनुमानको निवाज्यौ जन,
मन अनुमानि, बलि, बोल न बिसारिये।
सेवा-जोग तुलसी कबहुँ कहा चूक परी,
साहेब सुभाव कपि साहिबी संभारिये।।

अपराधी जानि कीजै सासति सहस भांति,
मोदक मरै जो, ताहि माहुर न मारिये।
साहसी समीरके दुलारे रघुबीरजूके,
बांह पीर महाबीर बेगि ही निवारिये ।।२०।।

हे महावीर ! संसार जानता है कि यह तुलसी हनुमानजी का कृपा-पात्र है। आप अपनी प्रतिज्ञा को न भूलिये। मैं बलि जाता हूँ। यह तुलसी किसी सेवा के योग्य नहीं था। कुछ भूल हो गयी हो तो अपनी स्वाभाविक उदारता का ध्यान करके मुझे अपराधी समझ कर चाहे सौ प्रकार से मेरी दुर्दशा कीजिये परन्तु 'जो लड्डू देने से मरता हो उसे विष से न मारिये।' हे रघुवीर के प्रिय, पवन के दुलारे, पराक्रमी, महावीर ! मेरी बाहुपीड़ा शीघ्र ही दूर कीजिये।

बालक, बिलोकि, बलि, बारेतें आपनो कियो,
दीनबंधु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये।
रावरो भरोसो तुलसीके, रावरोई बल,
आस रावरीये, दास रावरो बिचारिये।।
बड़ो बिकराल कलि, काको न बिहाल कियो,
माथे पगु बलीको, निहारि सो निवारिये।
केसरीकसोर, रनरोर, बरजोर बीर,
बांहुपीर राहुमातु ज्यौं पछारि मारिये ।।२१।।

हे दीनबन्धु ! आपने मुझे बालकपन से अपनाया है और मुझे अन्य सहारों से निश्चिन्त किया है। मैं बलिहारी जाता हूँ। मुझे आपका ही भरोसा है, आपका ही बल है, आपसे ही आशा है। मैं आपका दास हूँ। इस भयानक कलिकाल ने किसकी दुर्दशा नहीं की। मेरे भी मस्तक पर यह पैर जमाये हुए बैठा है। यह देखकर इससे मुझे मुक्त कीजिये। हे केसरी किशोर, हे महावीर, हे रणवीर, जिस प्रकार आपने राहु की माता राक्षसी को पछाड़ कर मारा था वैसे ही मेरी बाहुपीड़ा को नष्ट कर डालिये।

उथपे थपनथिर थपे उथपनहार,
केसरीकुमार बल आपनो संभारिये।
रामके गुलामनिको कामतरु रामदूत,
मोसे दीन दूबरेको तकिया तिहारिये॥
साहेब समर्थ तोसों तुलसीके माथे पर,
सोऊ अपराध बिनु बीर, बांधि मारिये।
पोखरी बिसाल बाँहु, बलि बारिचर पीर,
मकरी ज्यों पकरिके बदन बिदारिये॥२२॥

हे केसरीकुमार! आप अपने सामर्थ्य का स्मरण तो कीजिये। आप भय से भागे हुए (सुग्रीव, विभीषण आदि भक्तों) को वसाने वाले हैं और जमकर वसे हुए (वालि, रावण आदि दुष्टों) को उजाड़ने वाले हैं। हे श्रीराम दूत! आप श्रीराम के भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं। मुझ जैसे दीन-दुर्बलों को तो आपका ही सहारा है। हे महावीर! तुलसी के सिर पर आप जैसे समर्थ स्वामी का वरद हस्त होते हुए भी विना अपराध के ही बँधा हुआ पिट रहा है। मैं वलि जाता हूँ। मेरी भुजा विशाल पोखरी और उसकी पीड़ा, उस मकड़ी के समान है जो उछल-उछल कर मुझे कष्ट दे रही है। आप इस पीड़ा-रूपी मकड़ी का मुँह फाड़कर नष्ट कर दीजिये।

रामको सनेह, राम साहस लखन सिय,
रामकी भगति, सोच संकट निवारिये।
मुद-मरकट रोग-बारिनिधि हेरि हारे,
जीव-जामवंतको भरोसो तेरो भारिये॥
कूदिये कृपाल तुलसी सप्रेम-पब्बयतें,
सुथल सुबेल भालु बैठिकै बिचारिये।
महाबीर बांकुरे बराकी बाँहपीर क्यों न,
लंकिनी ज्यों लातघात ही मरोरि मारिये॥२३॥

हे हनुमानजी! मेरे हृदय में रामरूपी स्नेह, सीतारूपी भक्ति और लक्ष्मणरूपी साहस है। आपने श्रीराम, सीता और लक्ष्मण की

चिन्ता दूर की थी वैसे ही मेरे स्नेह, भक्ति और साहस की रक्षा कीजिये। वानररूपी मेरा आन्तरिक आनन्द इस भयंकर समुद्ररूपी रोग को देखकर हार मान गया है। अब तो जामवंतरूपी जीव को आपका ही भरोसा है। हे कृपालु ! तुलसी के प्रेमरूपी सुन्दर पर्वत से कूदिये और सुबेल पर्वत रूपी मेरे अपने चरण के प्रहार से मेरी लंकनी रूपी बाहुपीड़ा को पछाड़ कर मार डालिये।

लोक-परलोकहूं तिलोक न बिलोकियत,
तोसे समरथ चष चारिहूं निहारिये।
कर्म, काल, लोकपाल, अग-जग जीवजाल,
नाथ हाथ सब निज महिमा बिचारिये ।।
खास दास रावरो, निवास तेरो तासु उर,
तुलसी सो देव दुखी देखिअत भारिये।
बात तरुमूल बांहुसूल कपिकच्छु बेलि,
उपजी सकेलि कपिकेलि ही उखारिये ।।२४।।

हे हनुमानजी ! त्रैलोक्य में आपके समान लौकिक और पारलौकिक सुख देने में कोई समर्थ नहीं है। यह बात मैंने अपने बाहर के और भीतर के नेत्रों से देखकर निश्चित की है। हे नाथ ! कर्म (प्रारब्ध कर्म और वर्तमान कर्म), काल (तिथि, वार, नक्षत्र, लगन, मुहूर्त आदि), लोकपाल (इन्द्र आदि), सम्पूर्ण स्थावर एवं जंगम जीवों का समुदाय आपके हाथ में है। आप इस महिमा का स्मरण तो कीजिये। हे देव ! तुलसी आपका अपना सेवक है। मेरे हृदय में आपका निवास है। फिर भी मैं बहुत दुःखी हूँ। मेरे बाहुपीड़ा रूपी केवांचकी लता निकल आयी है। उसे जड़ से बटोर कर खेल-ही-खेल में उखाड़ फैंकिये।

करम-कराल-कंस भूमिपालके भरोसे,
बकी बकभगिनी काहूतें कहा डरैगी।
बड़ी बिकराल बालघातिनी न जात कहि,
बाँहुबल बालक छबीले छोटे छरैगी ।।

आई है बनाइ बेष आप ही बिचारि देख,
पाप जाय सबको गुनीके पाले परैगी ।
पूतनापिसाचिनी ज्यौं कपिकान्ह तुलसीकी,
बाँहपीर महाबीर, तेरे मारे मरैगी ।।२५।।

हे हनुमानजी ! मेरी वाहुपीड़ा कर्मरूपी राजा कंस के भरोसे जीने वाली वकासुर की वहिन पूतना राक्षसी के समान है। यह किसी से क्यों डरेगी ! यह मेरे वाहुवल रूपी छोटे वालक को छलेगी। यह सुन्दर रूप वनाकर आयी है। आप विचार कर देखें कि जव यह आप सरीखे गुणी के पाले पड़ेगी तभी सब पीड़ा दूर होगी। हे महावीर ! यदि यह पीड़ा पूतना के समान है तो आप वालकृष्ण के समान हैं। यह आपके द्वारा मारे जाने पर मरेगी।

भालकी कि कालकी कि रोषकी त्रिदोषकी है,
बेदन बिषम पाप-ताप छलछाँहकी ।
करमन कूटकी कि जंत्रमंत्र बूटकी,
पराहि जाहि पापिनी मलीन मनमाँहकी ।।
पैहहि सजाय, नत कहत बजाय तोहि,
बावरी न होहि बानि जानि कपिनाँहकी ।
आन हनुमानकी दोहाई बलवानकी,
सपथ महाबीरकी जो रहै पीर बाँहकी ।।२६।।

मेरी वाहु की भयंकर पीड़ा मेरे भाग्य के कारण है या समय के प्रभाव से है या किसीका कोप है या त्रिदोष या मेरे पाप के फल-स्वरूप है या किसी तंत्र-मंत्र रूपी वृक्ष का फल है। अरी मनमलिन पूतना रूपी वाहुपीड़ा, तू हनुमानजी का स्वभाव और प्रताप समझ कर दूर भाग जा। मैं डंके की चोट कहता हूँ कि अव तू नहीं रह सकती। श्री हनुमानजी की आन है। वलवान हनुमानजी की दोहाई है और महावीरजी की शपथ है।

सिंहिका संहारि बल, सुरसा सुधारि छल,
लंकिनी पछारि मारि बाटिका उजारी है।
लंक परजारि मकरी बिदारि बारबार,
जातुधान धारि धूरिधानी करि डारी है॥
तोरि जमकातरि मंदोदरी कढ़ोरि आनी,
रावनकी रानी मेघनाद महँतारी है।
भीर बाँहपीरकी निपट राखी महाबीर,
कौनके सकोच तुलसीके सोच भारी है॥२७॥

हे हनुमानजी ! आपने सिंहिका राक्षसी का संहार किया, सुरसा का छल दूर किया, लंकनी को मार गिराया, अशोक वाटिका उजाड़ डाली, लंकापुरी को जलाया, मकरी राक्षसी को मारकर राक्षसी सेना का विनाश किया। यद्यपि रावण की रानी और मेघनाद की माँ मंदोदरी यमराज की तलवार जैसे अस्त्र-शस्त्रधारी सेना की रक्षा में थी, उसे भी राजमहल से वाहर घसीट लाए परन्तु ऐसे आप महावीर किस संकोच में पड़े हैं जो अभी तक मेरी वाहुपीड़ा को नष्ट नहीं किया। इस वात की तुलसी को वहुत सोच है।

तेरो बालकेलि बीर सुनि सहमत धीर,
भूलत सरीरसुधि सक्र-रबि-राहुकी।
तेरी बाँह बसत बिसोक लोकपाल सब,
तेरो नाम लेत रहे आरति न काहुकी॥
साम दान भेद बिधि बेदहू लबेद सिधि,
हाथ कपिनाथहीके चोटी चोर साहुकी।
आलस अनख परिहासकै सिखावन है,
एतेदिन रही पीर तुलसीके बाहुकी॥२८॥

हे वीर हनुमान ! आपकी वाललीला सुनकर वड़े-वड़े धीर भी भयभीत हो जाते हैं। इन्द्र, सूर्य और राहु अपनी सुध भूल जाते हैं। आपके प्रताप से सव लोकपाल निश्चिन्त होकर वसे हुए हैं। आपके नाम के सुमिरन से किसी का दुःख नहीं रह जाता। वेद साक्षी हैं कि

तीनों नीतियाँ (साम, दाम और भेद) आपके हाथ में हैं और लोकनीति में भी मान्यता है कि चोर-साहू की चोटी आप कपिनाथ के हाथ में रहती है। तो अब यह बताइये कि तुलसीदास के इतने दिनों से वाहुपीड़ा रही है, इसका कारण क्या आपका आलस्य है या क्रोध है या परिहास है या मेरे लिए शिक्षा है ?

टूकनिको घर-घर डोलत कंगाल बोलि,
बाल ज्यौं कृपाल नतपाल पालि पोसो है।
कीन्ही है संभार सार अंजनीकुमार बीर,
आपनो बिसारि हैं न मेरेहू भरोसो है॥
इतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु,
कपिराज सांची कहौं को तिलोक तोसो है।
सासति सहत दास कीजे पेखि परिहास,
चीरीको मरन खेल बालकनिको सो है॥२६॥

हे शरणागत वत्सल ! आपको याद है कि मैं ऐसा दरिद्र था कि घर-घर टुकड़े मांगता फिरता था। आपने बुलाकर मेरा वालक के समान पालन-पोषण किया। हे वीर अंजनी कुमार ! आपने ही मेरा संरक्षण किया। आप मुझे नहीं भुलाएँगे, इसका मुझे भरोसा है। हे कपिराज ! आज आप सब प्रकार से समर्थ हैं। मैं सत्य कहता हूँ कि आपके समान इस समय तीनों लोकों में कोई नहीं है परन्तु मुझे यह पछतावा है कि यह दास दुर्दशा सह रहा है जिसका आप तमाशा देख रहे हैं, जैसे चिड़िया का मरण हो और वालकों का खेल।

आपने ही पापतें त्रितापतें कि सापतें,
बढ़ी है बाँहबेदन कही न सहि जाति है।
औषध अनेक जंत्र-मंत्र-टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है॥
करतार, भरतार, हरतार, कर्म, काल,
को है जगजाल जो न मानत इताति है।
चेरो तेरो तुलसी तू मेरो कह्यो रामदूत,
ढील तेरी बीर मोहि पीरतें पिराति है॥३०॥

हे हनुमानजी ! मेरी पीड़ा जो बढ़ती जा रही है वह मेरे ही पाप या त्रिताप (दैहिक, दैविक और भौतिक) से है या किसीके शाप के कारण है। न कही जाती है, न सही जाती है। इस पीड़ा को दूर करने के लिए अनेक औषधियाँ, यंत्र-मंत्र, टोटके, देवताओं को मनाना, सब उपाय किये परन्तु सब व्यर्थ हुआ। पीड़ा बढ़ती ही जाती है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कर्म, काल और संसारचक्र में ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञा को न मानता हो। हे रामदूत ! तुलसी आपका दास है। आप इसको 'तू मेरा' कह चुके हैं। फिर मेरी पीड़ा के प्रति आपकी यह उपेक्षा इस बाहुपीड़ा से भी अधिक मुझे दुःख दे रही है।

दूत रामरायको, सपूत पूत बायको,
समत्थ हाथ पायको सहाय असहायको।
बांकी बिरदावली बिदित बेद गाइयत,
रावन सो भट भयो मुठिकाके घायको॥
एते बड़े साहेब समर्थको निवाजो आज,
सीदत सुसेवक बचन मन कायको।
थोरी बाँहपीरकी बड़ी गलानि तुलसीको
कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभायको॥३१॥

हे हनुमानजी ! आप महाराज श्रीरामचन्द्र के दूत हैं, पवनदेव के सपूत हैं, आपके हाथ-पाँव बड़े समर्थ हैं, आप असहायों के आश्रय हैं, आपका सुन्दर यश विख्यात है जिसका वेदों में भी वर्णन है। रावण जैसा महान योद्धा भी आपके घूँसे की चोट से घायल हो गया। ऐसे महान और समर्थ स्वामी का कृपापात्र होते हुए और यह तुलसी आपका वचन, मन और कर्म से सेवक होते हुए भी कष्ट पा रहा है, यह कितने आश्चर्य की बात है। बाहुपीड़ा से अधिक तुलसी को इस बात की ग्लानि है कि मेरा कितना प्रवर पाप है जिसके कोप से आपका प्रत्यक्ष प्रताप भी प्रभावहीन हो रहा है।

देवी देव दनुज मनुज मुनि सिद्ध नाग,
छोटे बड़े जीव जेते चेतन अचेत हैं।
पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम,
रामदूतकी रजाइ माथे मानि लेत हैं।
घोर जंत्र मंत्र कूट कपट कुरोग जोग,
हनुमान आन सुनि छाड़त निकेत हैं।।
क्रोध कीजे कर्मको प्रबोध कीजे तुलसीको,
सोध कीजे तिनको जो दोष दुख देत हैं ।।३२।।

हे हनुमानजी ! देवी, देवता, दैत्य, मनुष्य, मुनि, सिद्ध, नाग और जितने छोटे-बड़े जड़ या चेतन जीव हैं तथा पूतना, पिशाचिनी, राक्षिसी-राक्षस और भी जो कुटिल प्राणी हैं वे सब श्रीरामदूत की आज्ञा सिर-माथे पर मानते हैं। बड़े-बड़े यंत्र-मंत्र, जादू-टोने, कपट, दुर्भाग्य और रोग, सभी आपकी दोहाई सुनते ही भाग खड़े होते हैं। मेरे कुकर्मों पर क्रोध करके उन्हें नष्ट कीजिये और जो दोष दुःख देते हैं उनको ठीक कर दीजिये और तुलसी को सान्त्वना दीजिये।

तेरे बल बानर जिताये रन रावनसों,
तेरे घाले जातुधान भये घर-घरके।
तेरे बल रामराज किये सब सुरकाज,
सकल समाज साज साजे रघुबरके।।
तेरो गुनगान सुनि गीरबान पुलकत,
सजल बिलोचन बिरंचि हरि हरके।
तुलसी के माथे पर हाथ फेरो कीसनाथ,
देखिये न दास दुखी तोसे कनिगरके।।३३।।

हे हनुमानजी ! आपके बल ने वानरों को रावण से युद्ध में विजयी किया। आपकी मार से राक्षस बेघर हुए मारे-मारे फिरते हैं। आपके बल के सहारे महाराजा रामचन्द्रजी ने देवताओं के कार्य पूर्ण किये और आपने ही श्रीरामचन्द्र के सब काम सफल किये। आपके गुणों का गान सुनकर देवता आनन्दित होते हैं और ब्रह्मा, विष्णु, शिव की

आँखों में प्रेमाश्रु भर आते हैं। हे कपीश्वर ! तुलसी के सिर पर हाथ फेरिये। आपके समान अपनी प्रतिष्ठा की लाज रखने वाले, अपने सेवक को दुःख-संकट में नहीं देख सकते।

पालो तेरे टूकको परेहू चूक मूकिये न।
कूर कौड़ी दूको हौं आपनी ओर हेरिये।
भोरानाथ भोरेही सरोष होत थोरे दोष,
पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिये॥
अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ, सोन
बूझिये बिलंब अवलंब मेरे तेरिये।
बालक बिकल जानि पाहि प्रेम पहिचानि,
तुलसीकी बाँह पर लामी लूम फेरिये॥३४॥

हे हनुमानजी ! मैं तो आपसे टुकड़े पाकर पला हूँ। मुझसे कोई भूल हुई हो तो भी मुझे न छोड़िये। मैं तो पथभ्रष्ट दो-कौड़ी का हूँ किन्तु आप तो अपनी ओर देखिये कि आप कितने महान हैं और आपकी कितनी प्रतिष्ठा है। हे भोलानाथ ! आप अपने भोले स्वभाव के कारण थोड़ा-सा दोष देखते ही रुष्ट हो जाते हैं। शान्त होकर मेरा पालन-पोषण संरक्षण कीजिये। मुझे अपनाकर अब न छोड़िये। आप जल हैं तो मैं जलचर हूँ। आप माता हैं तो मैं छोटा बालक हूँ। मैं आपके आश्रित हूँ। विलम्ब न कीजिये। मुझे आपका ही सहारा है। मुझ बालक को व्याकुल देखकर और प्रेम को पहचानकर रक्षा कीजिये। तुलसी को अपने स्पर्श से नीरोग कर दीजिये।

घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यौं,
बासर जलद घन घटा धुकि धाई है।
बरसत बारि पीर जारिये जवासे जस,
रोष बिनु दोष, धूम-मूल मलिनाई है॥
करुनानिधान हनुमान महाबलवान,
हेरि हँसि हाँकि फूँकि फौजैं तैं उड़ाई है।
खाये हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि,
केसरीकिसोर राखे बीर बरिआई है॥३५॥

हे हनुमानजी ! मुझे रोगों ने, बुरी ग्रह-दशाओं और दुष्ट लोगों ने ऐसे घेर लिया था जैसे दिन में जल भरे बादल की घटाएँ आकाश को घेर लेती हैं। और विना अपराध क्रोध करके पीड़ा रूपी जल वरसा रही थीं। इससे मैं जवासे के समान जला जा रहा था। हे करुणानिधान महावलवान हनुमानजी ! आपने हँसकर मेरी ओर देखा और ललकारकर फूँक से उस विपत्ति रूपी सेना को उड़ा दिया। तुलसी को यह सव कुरोग रूपी राक्षस खा गये होते। परन्तु हे केसरी किशोर ! आपने अपनी शक्ति से ही रक्षा की है।

भावार्थ एवं श्रद्धा की दृष्टि से उस मत का समर्थन होता है कि पद ३६ से ४४ तक का संग्रह पूज्य गोस्वामी तुलसीदासजी ने किसी अन्य समय या अन्य संदर्भ में किया होगा, क्योंकि पद ३५ में सिद्धि होकर पीड़ा का निवारण हो चुका है। अतः वे ९ पद 'अतिरिक्त' के रूप में दिये जा रहे हैं।

श्री हनुमान-बाहुक (अतिरिक्त)

सवैया

रामगुलाम तुही हनुमान
गोसाईं सुसाइं सदा अनुकूलो।
पाल्यो हौ बाल ज्यों आखर दू
पितु मातु सों मंगल मोद समूलो॥
बाँहकी बेदन बाँहपगार
पुकारत आरत आनंद भूलो।
श्रीरघुबीर निवारिये पीर
रहौ दरबार परो लटि लूलो॥३६॥

हे हनुमान गोसाईं! आप श्रीराम के श्रेष्ठ सेवक हैं। आप सदा अनुग्रह करने वाले हैं। आनन्द-मंगल करने वाले 'रा' और 'म' दो अक्षरों ने माता-पिता के समान सदा मेरा पालन-पोषण किया है। अपनी भुजाओं के वल से आश्रितों की रक्षा करने वाले हे हनुमानजी! मैं वाहुपीड़ा के कारण सारा आनन्द भुलाकर दुःखी होकर पुकार रहा हूँ। 'श्रीराम! आप मेरी पीड़ा दूर कर डालिये। क्या आपके दरवार में आकर भी दुर्बल और लूला रहूँगा'?

घनाक्षरी

कालकी करालता करम कठिनाई कीधौं,
पापके प्रभावकी सुभाय बाय बावरे।
बेदन कुभाँति सो सही न जाति राति दिन,
सोई बाँह गही जो गही समीरडावरे॥
लायो तरु तुलसी तिहारो सो निहारि बारि,
सींचिये मलीन भो तयो है तिहूँ तावरे।
भूतनिकी आपनी परायेकी कृपानिधान,
जानियत सबहीकी रीति राम रावरे॥३७॥

न जाने यह काल की भयानकता से या कर्मों के फल से या मेरे पापों के प्रभाव से या वायु के दोष से यह रोग उपजा है। रात-दिन भयंकर पीड़ा हो रही है जो सही नहीं जाती। और यह वही बाँह है जिसे पकड़ कर हे पवनकुमार! आपने मुझे अपनाया है। यह तुलसी-रूपी वृक्ष आपका ही लगाया हुआ है। अब यह तीनों तापों से झुलस-कर मुरझा रहा है। इसकी ओर निहारकर कृपारूपी जल से इसे सींच दीजिये। हे कृपानिधान श्रीराम! आप अपनी और दूसरों की और भूतों की सब रीति जानते हैं।

पायंपीर पेटपीर बाँहपीर मुँहपीर,
जरजर सकल सरीर पीरमई है।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह,
मोहिपर दवरि दमानक सी दई है॥
हौं तो बिन मोलके बिकानो बलि बारेही तें,
ओट रामनामकी ललाट लिखि लई है।
कुंभजके किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय रामराय ऐसी हाल कहूँ भई है॥३८॥

पाँव की पीड़ा, पेट की पीड़ा, वाहु की पीड़ा, मुख की पीड़ा, सारा शरीर पीड़ा में होकर जर-जर हो रहा है। देवता, भूत, पितर, कर्म, काल, दुष्ट, ग्रह सबने मुझ पर एक साथ तोपों के समान धावा कर दिया

है। मैं तो वाल्यावस्था से ही आपके हाथों विना मोल विका हुआ हूँ और ललाट पर राम-नाम की शरण लिख ली है। मैं वलि जाता हूँ। हे महाराज रामचन्द्रजी ! कहीं ऐसी भी दशा कभी हुई है कि समुद्र सोख डालनेवाले अगस्त्य मुनि का सेवक गाय के खुर इतने जल में डूव जाये !

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
रामनाम लेत माँगि खात टूकटाक हौं।
परयो लोकरीति में पुनीत प्रीति रामराय,
मोहबस बैठो तोरि तरकितराक हौं॥
खोटे-खोटे आचरन आचरत अपनायो,
अंजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हौं।
तुलसी गोसाईं भयो भोंड़े दिन भूलि गयो,
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं॥३९॥[1]

मैं वाल्यावस्था से ही सरल स्वभाव से श्रीराम के सम्मुख हो गया और राम-नाम लेता हुआ टुकड़ा-टुकड़ा माँगकर खाता फिरता था। फिर युवावस्था में सांसारिक रीति-व्यवहार में पड़ गया और अज्ञान-वश राजा रामचन्द्रजी की पवित्र प्रीति को संसार में कूदकर तोड़ बैठा। तव खोटे-खोटे आचरणों को करने पर भी मुझे श्री अंजनीकुमार ने अपनाया और श्रीरामचन्द्रजी के पुनीत हाथों से मेरा सुधार करवाया। इससे तुलसी गोस्वामी वन गया और अपने पिछले बुरे दिन भूल गया। अव उसी का फल वाहुपीड़ा और सारे शरीर की पीड़ा के रूप में पा रहा है।

असन-बसन-हीन विषम-विषाद-लीन,
देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को।
तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो,
दियो फल सीलसिंधु आपने सुभायको॥

---

१. भावार्थ एवं श्रद्धा के अनुकूल यहाँ पद ३९ से ४४ को जान-बूझकर यह क्रम दिया है क्योंकि पीड़ा का निवारण पद ४४ में हुआ है। (अन्य पाठ-पुस्तकों की अपेक्षा क्रमान्तर हुआ है। उनमें वह पद, पद ३९ के ऊपर है)।

नीच यहि बीच पति पाइ भरुहाइबो,
बिहाइ प्रभु-भजन बचन मन कायको।
तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस,
फूटि-फूटिनिकसत लोन रामरायको ।।४०।।

जिस तुलसी को न भोजन का ठिकाना था, न वस्त्र का और जो सदा भयंकर विपत्ति में डूवा हुआ दीन-दुर्बल हो रहा था और ऐसा कौन था जो उसे देखकर सहानुभूति से हाय-हाय न करता हो, ऐसे अनाथ तुलसी को करुणासागर श्रीरघुनाथजी ने अपनी शरण में लेकर सनाथ कर दिया और अपने स्वभाववश उसे प्रतिष्ठारूपी उत्तम फल दिया। परन्तु इस वीच में यह नीच जन प्रतिष्ठा पाकर अभिमान में फूल गया और वचन, मन, कर्म से श्रीरामजी का भजन छोड़ दिया। इसीलिए शरीर से भयंकर वरतोर के रूप में महाराज रामचन्द्रजी का नमक फूट-फूटकर निकला पड़ रहा है।

जिओं जग जानकीजीवनको कहाइ जन,
मरिबेको बारानसी बारि सुरसरिको।
तुलसीके दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाऊँ,
जाके जिये मुये सोच करिहैं न लरिको।।
मोको झूठो सांचो लोग रामको कहत सब,
मेरे मन मान है न हरको न हरिको।
भारी पीर दुसह सरीरतें बिहाल होत,
सोऊ रघुबीर बिनु सके दूर करि को।।४१।।

जानकी जीवन श्रीरामजी का दास कहला कर मैं संसार में जी रहा हूँ और मरने के लिए वाराणसी आ वसा हूँ जहाँ सदा गंगाजल मिलता रहेगा। इस प्रकार तुलसीदास के दोनों हाथों में लड्डू हैं क्योंकि उसके जीने-मरने पर कोई लड़का सोच करने वाला नहीं है। लोग मुझे रामभक्त कहते हैं। चाहे यह सच हो या झूठ, परन्तु मुझे इस वात का गर्व अवश्य है कि मैं श्रीराम को छोड़कर न तो शिव का भक्त हूँ न विष्णु का। मैं जो भारी पीड़ा से विकल हो रहा हूँ उस पीड़ा को श्रीराम

के अतिरिक्त कोई दूसरा दूर नहीं कर सकता।

सीतापति साहेब सहाय हनुमान नित,
हित उपदेसको महेस मानो गुरुकै।
मानस बचन काय सरन तिहारे पांय,
तुम्हरे भरोसे सुर मैं न जाने सुरकै।।
ब्याधि भूतजनित उपाधि काहू खलकी,
समाधि कीजे तुलसीको जानि जन फुरकै।
कपिनाथ रघुनाथ भोलानाथ भूतनाथ,
रोगसिंधु क्यों न डारियत गाय खुरकै।।४२।।

मेरे स्वामी हैं सीतापति श्रीराम। मेरी नित्य सहायता करते हैं श्रीहनुमानजी। और मुझे हितोपदेश करते हैं श्री शिवजी जिनको मैं गुरु मानता हूँ। मुझे तो तन, मन, वचन से आपके चरणों की शरण है। आपके भरोसे मैंने अन्य देवताओं को देवता करके नहीं माना। जो मुझे पीड़ा हो रही है वह मेरे भूतकाल के कर्मों से या किसी दुष्ट उपद्रव से हो रही है। तुलसी को अपना सच्चा सेवक जानकर इसका कष्ट दूर कीजिये। हे कपिनाथ हनुमानजी, हे श्रीरघुनाथजी, हे भूतनाथ श्री शिवजी, इस रोगरूपी समुद्र को गाय के खुर के समान क्यों नहीं अत्यन्त छोटा कर डालते।

कहौं हनुमानसों सुजान रामरायसों,
कृपानिधान संकरसों सावधान सुनिये।
हरष बिषाद राग रोष गुन दोषमई,
बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिये।।
माया जीव कालके करमके सुभायके,
करैया राम बेद कहैं सांची मन गुनिये।
तुम्हतें कहा न होय हाहा सो बुझैये मोहि,
हौं हूँ रहों मौन ही बयो सो जानि लुनिये।।४३।।

हनुमानजी से, सुजान महाराजा श्रीरामजी से और कृपानिधान शंकरजी से कहता हूँ; सावधान होकर सुन लीजिये। प्रत्यक्ष है कि

विधाता ने इस संसार को हर्ष-विषाद, प्रेम-क्रोध और गुण-दोष से भरा हुआ वनाया है। वेद साक्षी हैं कि माया, जीव, काल, कर्म और स्वभाव के कर्ता श्रीराम हैं। मैंने इसे चित्त में सत्य माना है। मैं विनती करता हूँ मुझे समझा दीजिये कि आपसे क्या नहीं हो सकता। वस, इतना ही कहकर मैं चुप होता हूँ। जो कुछ वोया है सो काट रहा हूँ।

बाहुक-सुबाहु नीच लीचर-मरीच मिलि,
मुँहपीर-केतुजा कुरोग जातुधान हैं।
रामनाम जपजाग कियो चहों सानुराग
काल कैसे दूत भूत कहा मेरे मान हैं।।
सुमिरे सहाय रामलखन आखर दोऊ,
जिनके समूह साके जागत जहान हैं।
तुलसी सँभारि ताड़का-सँहारि भारी भट,
बेधे बरगदसे बनाइ बानवान हैं।।४४।।

वाहु और शरीर की पीड़ा सुवाहु और मारीच के समान और मुख की पीड़ा ताड़का के समान थी और अन्य बुरे रोग इनकी सेना थे। मैं प्रेमपूर्वक राम-नाम के जप का यज्ञ करना चाहता हूँ परंतु यह सव राक्षस मेरे वस के नहीं थे। राम-नाम की कीर्ति जगत्-विख्यात है। 'रा' और 'म' अक्षरों ने राम-लक्ष्मण के समान मेरी सहायता की और तुलसी को सँभाल लिया। मुख-पीड़ारूपी ताड़का को मारा और वाहुपीड़ा आदि दुष्टों को ऐसा बेधा जैसे वड़ का फल।

श्री हनुमान बाहुक के पाठ का महात्म्य

"...शारीरिक रोगों के अतिरिक्त और भी सव प्रकार की लौकिक बाधाएँ इस स्तोत्र से निवृत्त होती हैं...

...इससे मानस रोग मोह, काम, क्रोध, लोभ एवं राग-द्वेष आदि तथा कलियुगकृत वाधाएँ भी निवृत्त होती हैं...

...इस स्तोत्र के द्वारा आराधित होकर श्री हनुमानजी भक्तों के सभी मनोरथ सिद्ध करते हैं..."

—श्री श्रीकान्तशरणजी

श्रीहनुमान-साठिका

दोहा

बीर बखानौं पवनसुत, जानत सकल जहान।
धन्य धन्य अंजनि-तनय, संकर, हर, हनुमान्॥

वीर पवनकुमार की कीर्ति का वर्णन करता हूँ जिसको सारा संसार जानता है। हे आंजनेय! हे भगवान शंकर के अवतार हनुमानजी! आप धन्य हैं, धन्य हैं।

चौपाई

जय जय जय हनुमान् अखंडी। जय जय महाबीर बजरंगी॥
जय कपीस जय पवन-कुमारा। जय जग-बन्दन सील-अगारा॥
जय उद्योग अमर अविकारी। अरि-मरदन जय जय गिरिधारी॥
अंजनि-उदर जन्म तुम लीना। जय-जयकार देवतन कीना॥१॥

हे हनुमानजी! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आपकी गति अवाध है। कोई आपका मार्ग नहीं रोक सकता। हे वज्र के समान कठोर अंगों वाले महावीर! आपकी जय हो, जय हो। हे कपियों के राजा! आपकी जय हो। हे पवनपुत्र! आपकी जय हो। हे सारे संसार के वंदनीय! हे गुणों के भंडार! आपकी जय हो। हे *कर्त्तव्य-प्रवीण*, हे देवता, हे अविकारी! आपकी जय हो। हे शत्रुओं का नाश करने वाले! आपकी जय हो। हे द्रोणाचल को उठाने वाले! आपकी जय हो। आपने माता अंजनी के गर्भ से जन्म लिया।

देवताओं ने जय-जयकार की।

बाजी दुंदुभि गगन गंभीरा। सुर-मन हरष, असुर-मन पीरा।।
कपि के डर, गढ़ लंक सकाने। छूटे बंदि देव, सब जाने।।
रिषय-समूह निकट चलि आये। पवन-तनय-के पद सिर नाये।।
बार-बार अस्तुति करि नाना। निरमल नाम धरा हनुमाना।।२।।

आकाश में नगाड़े वजे, देवता मन में हर्षित हुए, असुरों के मन में पीड़ा हुई। आपके डर से लंका के किले में रहने वाले भयभीत हो गये। आपने देवताओं को कारागार से छुड़ाया। यह सब जानते हैं। ऋषियों के समूह आपके पास आए और हे पवनकुमार! आपके चरणों में सिर नवाये और वहुत प्रकार से वार-वार स्तुति की और आपका पावन नाम 'हनुमान्' रखा गया।

सकल रिषय मिलि अस मत ठाना। दीन बताय लाल फल खाना।।
सुनत बचन कपि अति हरषाने। रबि-रथ गहे लाल फल जाने।।
रथ-समेत रबि कीन अहारा। सोर भयउ तहं अति भयकारा।।
बिनु तमारि सुर-मुनि अकुलाने। तब कपीस-कै अस्तुति ठाने।।३।।

सव ऋषियों ने सर्वसम्मति से आपको लाल फल खाने की प्रेरणा दी जिसे सुनकर आप वहुत हर्षित हुए और सूर्य को लाल फल समझ कर रथ समेत पकड़ लिया। आपने सूर्य को रथ सहित मुँह में रख लिया। तव अत्यन्त भय छा गया और हाहाकार मच गया। सूर्य के विना सव देवता और मुनि व्याकुल होकर आपकी स्तुति करने लगे।

सकल लोक बृत्तांत सुनावा। चतुरानन तब रबि ढंगिलावा।।
कहा बहोरि, सुनहु बल-सीला। रामचन्द्र करिहैं बहु लीला।।
तब तुम तिनकर करब सहाई। अबहिं रहहु कानन-महं जाई।।
अस कहि बिधि निज लोक सिधारा। मिले सखा-संग पवन-कुमारा।।४।।

सारे संसार की दशा सुनाकर ब्रह्माजी ने सूर्य को मुक्त करने के लिए आपको मनाया। तव आपसे विनती की, हे महावीर! सुनिये। श्रीरामचन्द्र जी महान लीला करेंगे तव आप उनकी सहायता

करियेगा। अभी तो आप वन में जाकर रहिये। यह कहकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गए और हे पवनकुमार! आप अपने सखाओं में मिल गए।

खेलहिं खेल महातरू तोरी। गली करत परबत-मैं फोरी।।
जेहि गिरि चरन देत कपिराई। बल सो चमकि रसातल[1] जाई।।
कपि सुग्रीव बालि-की त्रासा। निरभय रहेउ राम मग-आसा।।
मिले राम लै पवन-कुमारा। अति आनन्द समीर-दुलारा।।५।।

खेल-ही-खेल में आपने वड़े-वड़े वृक्ष तोड़ डाले और पर्वतों को फोड़-फोड़ कर मार्ग वनाया। हे हनुमानजी! जिस पर्वत पर आपने चरण रखे वह प्रकाशमान होकर रसातल[1] में चला गया। सुग्रीवजी वाली से डरे हुए थे। श्रीरामचन्द्र की प्रतीक्षा करते हुए निर्भय रहते थे। हे पवनकुमार! आपने लाकर उन्हें श्रीरामचन्द्र जी से मिला दिया। और हे पवननंदन! आपको इसमें वहुत आनन्द हुआ।

मनि मुंदरी रघुपति-सौं पाई। सीता खोज चले कपिराई।।
सत योजन जलनिधि बिस्तारा। अगम अपार देव-मुनि हारा।।
बिन श्रम गोखुर सरिस कपीसा। नांघि गयो कपि कहि जगदीसा।।
सीता-चरन सीस तिन नायौ। अजर अमर की आसिष पायौ।।६।।

हे हनुमानजी! श्रीराघवेन्द्र से आपको मणिजड़ित अँगूठी मिली जिसे लेकर आप श्रीसीताजी की खोज करने चले। हे हनुमानजी! सौ योजन का विशाल, अथाह, समुद्र जिसे देवता और मुनि भी पार नहीं कर सकते थे, उसे आपने 'जय श्रीराम' कहकर विना थके हुए सहज ही लाँघ लिया जैसे गऊ के खुर को। और श्रीसीताजी के पास पहुँचकर उनके चरण-कमल में सिर नवाया जिस पर सीताजी से आपने आशीर्वाद पाया—

"अजर अमर गुन निधि सुत होहू। करहुँ वहुत रघुनायक छोहू।"

---

१. पृथ्वी के नीचे सात लोक कहे जाते हैं—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल।

रहे दनुज उपवन-रखवारी। एक-तें एक महा भट भारी।।
तिन्हैं मारि, उपवन करि खीसा। दह्यो लंक कांप्यौ दससीसा।।
सिया बोध दै पुनि फिरि आयो। रामचन्द्र-के पद सिर नायो।।
मेरु बिसाल आनि पल मांही। बांध्यौ सिंधु निमिष इक मांही।।७।।

एक-से-एक भयंकर योद्धा, राक्षस वाटिका की रखवाली करते थे। उन्हें आपने मारा, उपवन को नष्ट किया, लंका को जलाया जिससे रावण भयभीत होकर काँप गया। आपने सीताजी को धीरज दिया और लौट आकर श्रीरामचन्द्र के चरणों में सिर नवाया। वड़े-वड़े पर्वतों को लाकर आपने पलभर में समुद्र पर पुल बँधाया।

भये फनीस सक्ति-बस जबहीं। राम बिलाप कीन बहु तबहीं।।
भवन समेत सुखेनहिं लाये। भूरि सजीवनि कहं तब धाये।।
मग-महं कालनेमि कहं मारा। अमित सुभट निसिचर संहारा।।
आनि सजीवन सैल-समेता। धरि दीन्ह्यौ जहं कृपानिकेता।।८।।

जव लक्ष्मणजी को शक्ति लगी तव श्रीरामचन्द्र ने वहुत विलाप किया। आप सुखेन वैद्य को भवन समेत ही उठा लाए। आप वड़े वेग से संजीवनी बूटी लेने गए। रास्ते में कालनेमि को मारा और असंख्य योद्धा-निशाचरों को नष्ट किया। आपने पर्वत-सहित संजीवनी को लाकर करुणानिधान श्रीरामचन्द्र के पास रख दिया।

फनपति-केर सोक हरि लीन्ह्यौ। बरषि सुमन,सुर जय-जय कीन्ह्यौ।।
महिरावन हरि अनुज-समेता। लै गो जहाँ पताल-निकेता।।
तहाँ रहै देवी अस्थाना। दीन्ह चहै बलि काढ़ि कृपाना।।
पवन-तनय तहं कीन्ह गोहारी। कटक-समेत निसाचर मारी।।९।।

आपने लक्ष्मणजी के संकट को दूर कर दिया। देवताओं ने पुष्प-वर्षा करके जय-जयकार की। अहिरावण श्रीराम-लक्ष्मण को पाताल में ले गया। वहाँ देवीजी के स्थान पर उनकी वलि देने के लिए तलवार निकाल ली। उसी समय हे हनुमानजी ! आपने वहाँ पहुँच कर ललकारा और उस राक्षस को सेना समेत मार डाला।

रिच्छ कीसपति जहाँ बहोरी। राम-लखन कीन्हेउ यक ठौरी॥
सब देवन-कै बंदि छोड़ाई। सोइ कीरति नारद मुनि गाई॥
अच्छ कुमार दनुज बलवाना। स्वामि केतु कहं सब जग जाना॥
कुम्भकर्न रावन-कै भाई। ताहि निपात कीन्ह कपिराई॥१०॥

जहाँ जामवंत और सुग्रीव थे, वहाँ आप श्रीराम-लक्ष्मण को लौटा लाए। आपने सब देवताओं को बंधन से छुड़ा दिया। नारद मुनि ने आपका यशगान किया। अक्षकुमार राक्षस वहुत वलवान था। स्वामी केतु को सव संसार जानता है। रावण का भाई कुम्भकरण था। हे हनुमानजी! इन सवका आपने विनाश किया।

मेघनाद संग्रामहिं मारा। पवन-तनय सम को बरियारा॥
मुरहा[1] तनय नरांतक नामा। पल-महं ताहि हता हनुमाना॥
जहं लगि नाम दनुज-कर पावा। संभु-तनय तहं मारि खसावा॥
जय मारुत-सुत जन अनुकूला। नाम कृसान सोक सम तूला॥११॥

आपने युद्ध में मेघनाद को पछाड़ा। हे पवनकुमार! आपके समान कौन वलवान है? मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाले नारान्तकनामक रावण के पुत्र को हे हनुमानजी! आपने क्षण भर में परास्त कर दिया। जहाँ-जहाँ आपने राक्षसों को पाया, हे शिव अवतार! आपने उन्हें मारकर ढकेल दिया। हे पवनपुत्र! आपकी जय हो। आप सेवकों के कार्य-सिद्धि में सहायक हुए। उनके शोक रूपी रुई को जलाने में आपका नाम अग्नि के समान है।

जेहि जीवन-कहं संकट होई। रवि-समान तम-संकट खोई॥
बंदि परे सुमिरै हनुमाना। गदा-चक्र लै चलु बलवाना॥
जम-कहं मारि बाम दिसि दीन्हा। मृत्युहिं बाँधि हाल बहु कीन्हा॥
सो भुजबल का कीन कृपाला। अछत तुम्हार मोरि यह हाला॥१२॥

जिसके जीवन में कोई संकट हो, आप उसे वैसे ही दूर कर देते हैं जैसे अँधेरे को सूर्य। हे हनुमानजी! बंदी होने पर जो आपका स्मरण करता है उसकी रक्षा करने के लिए आप गदा और चक्र लेकर

---

१. मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाला

चल पड़ते हैं। यमराज को भी ऊपर दिशा में फेंक देते हैं और मृत्यु को भी बाँधकर उसकी बुरी दशा करते हैं। हे कृपासागर ! आपकी वह शारीरिक शक्ति कहाँ गयी जो आपके रहते मेरी यह दशा हो रही है।

आरति-हरन नाम हनुमाना। सारद-सुरपति कीन्ह बखाना।।
रहै न संकट एक रती-को। ध्यान धरै हनुमान जती को।।
धावहु देखि दीनता मोरी। मेटहु बंदि, कहहुं कर जोरी।।
कपिपति बेगि अनुग्रह करहू। आतुर आइ दास-दुख हरहू।।१३।।

हे हनुमानजो ! आपका नाम संकटमोचन है। श्री सरस्वतीजी और देवराज इन्द्र ऐसा वर्णन करते हैं कि जो व्यक्ति ब्रह्मचारी हनुमानजी आपका ध्यान धरता है उसका एक रत्ती के बराबर भी संकट नहीं रह सकता। आप मेरी दीनता देखकर अति तीव्र गति से आइये और मेरे बंधनों को काट दीजिए। मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ। हे हनुमानजी ! शीघ्र कृपा कीजिये। मुझ दास का दुःख दूर करने के लिए आप उतावले होकर आइये।

राम-सपथ मैं तुर्मांहि धरावा। जो न गुहार लागि सिव-जावा।।
बिरद तुम्हारि सकल जग जाना। भव-भय-भंजन तुम हनुमाना।।
यहि बंधन-करि केतिक बाता। नाम तुम्हार जगत-सुख-दाता।।
करहु कृपा जय जय जग-स्वामी। बार अनेक नमामि नमामी।।१४।।

हे शिव अवतार ! यदि आप मेरी पुकार सुनकर न आओ तो मैं आपको श्रीराम की शपथ देता हूँ। आपका यश सारा संसार जानता है। हे हनुमानजी ! आप संसार में वार-वार जन्म लेने के भय को भी दूर कर देते हैं फिर मेरा यह बंधन कितना-सा है ? आपका जगत्-सुखदाता नाम है। हे जग के स्वामी ! आपकी जय हो। आप कृपा कीजिये। मैं अनेक बार आपको नमस्कार करता हूँ।

भौम बार करि होम बिधाना। धूप-दीप-नैवेद्य सजाना।।
मंगल-दायक को लौ लावै। सुर नर मुनि तुरतहिं फल पावै।।
जयति जयति जय जय जग-स्वामी। समरथ सब जग अन्तर-जामी।।
अंजनि-तनय नाम हनुमाना। सो तुलसी-कहं कृपानिधाना।।१५।।

जो कोई मंगलवार को विधिपूर्वक हवन करे, धूप-दीप-नैवेद्य समर्पित करे और मंगलकारक श्रीहनुमानजी में लगन लगावे, वह चाहे देवता हो या मनुष्य हो या मुनि हो, तुरन्त ही उसका फल पायेगा। हे जगत् के स्वामी! आपकी जय हो, जय हो, जय हो जय हो। हे हनुमानजी! आप समर्थ विश्वात्मा, मन की बात जानने वाले, 'आंजनेय' आपका नाम है। आप तुलसी के कृपानिधान हैं।

दोहा

जय कपीस सुग्रीव तुम, जय अंगद हनुमान।
राम-लखन-सीता-सहित, सदा करो कल्यान॥
जो यह साठिक पढ़इ नित, तुलसी कहैं बिचारि।
पड़ै न संकट ताहि-कौ, साखी हैं त्रिपुरारि॥

सुग्रीवजी की जय, अंगदजी की जय, हनुमानजी की जय, श्रीराम लक्ष्मणजी, सीताजी सहित सदा कल्याण कीजिये। तुलसीदास की यह घोषणा है कि जो इस हनुमान साठिका को नित्य पढ़ेगा वह कभी संकट में नहीं पड़ेगा। श्री शिवजी साक्षी हैं।

सवैया

आरत बैन पुकारत हौं कपिनाथ सुनो बिनती मम भारी।
अंगद औ नल-नील महाबलि देव सदा बल-की बलिहारी॥
जाम्बवान् सुग्रीव पवन-सुत दिबिद मयंद महाभटभारी।
दुख-दोष हरो तुलसी जन-को श्री द्वादश बीरन-की बलिहारी॥

(श्री तुलसीदासजी कहते हैं) हे हनुमानजी! मैं भारी विपत्ति में पड़कर आपको पुकार रहा हूँ। आप मेरी विनय सुनिये। अंगद[१], नल[२], नील[३], महादेव[४], राजा वलि[५] भगवान राम[६] (देव), वलराम[७], शूरवीर, जाम्वान्[८], सुग्रीव[९], पवनपुत्र हनुमान[१०], द्विविद[११] और मयन्द[१२]—इन बारह वीरों की मैं बलिहारी (न्यौछावर) हूँ; भक्त के दुःख और दोष को दूर कीजिये।

श्रीहनुमानचालीसा

दोहा

श्रीगुरु चरन सरोज रज
निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु
जो दायकु फल चारि ॥१॥

श्री गुरु महाराज के चरण कमलों की धूलि से अपने मनरूपी दर्पण को पवित्र करके श्रीरघुवीर के निर्मल यश का वर्णन करता हूँ, जो चारों फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) देने वाला है।

बुद्धिहीन तनु जानिके,
सुमिरौं पवन - कुमार।
बल बुधि बिद्या देहु मोहिं,
हरहु कलेस बिकार ॥२॥

हे पवनकुमार ! मैं आपका सुमिरन करता हूँ। आप तो जानते ही हैं कि मेरा शरीर और बुद्धि निर्बल है। मुझे शारीरिक वल, सद्बुद्धि एवं ज्ञान दीजिये और मेरे दुःखों व दोषों का नाश कर दीजिये।

चौपाई

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर।
जय कपीस तिहुं लोक उजागर ॥१

श्रीहनुमानजी ! आपकी जय हो। आपका ज्ञान और गुण अथाह है। हे कपीश्वर ! आपकी जय हो। आप तीनों लोकों (स्वर्ग-लोक, भू-लोक और पाताल - लोक) में आपकी कीर्ति है।

राम दूत अतुलित बल धामा।
अंजनि-पुत्र पवनसुत नामा।।२

हे पवनसुत अंजनीनन्दन ! श्रीरामदूत ! आपके समान दूसरा वलवान नहीं है।

महाबीर बिक्रम बजरंगी।
कुमति निवार सुमति के संगी।।३

हे महावीर वजरंगवली ! आप विशेष पराक्रम वाले हैं। आप बुरी बुद्धि को दूर करते हैं और अच्छी बुद्धि वालों के साथी सहायक हैं।

कंचन बरन बिराज सुबेसा।
कानन कुंडल कुंचित केसा।।४

आप सुनहले रंग, सुन्दर वस्त्रों, कानों में कुण्डल और घुँघराले वालों से सुशोभित हैं।

हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै।
कांधे मूँज जनेऊ साजै।।५

आपके हाथ में वज्र और ध्वजा है और कन्धे पर मूँज के जनेऊ की शोभा है।

संकर सुवन केसरीनंदन।
तेज प्रताप महा जग बंदन।।६

हे शंकर के अवतार ! हे केसरी-नन्दन ! आपके पराक्रम और महान यश की संसार भर में वन्दना होती है।

बिद्यावान गुनी अति चातुर।
राम काज करिबे को आतुर।।७

आप प्रकाण्ड विद्यानिधान हैं। गुणवान और अत्यन्त कार्यकुशल होकर श्रीराम-काज करने के लिए उत्सुक रहते हैं।

प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया।
राम लषन सीता मन बसिया।।८

आप श्रीरामचरित सुनने में आनन्द-रस लेते हैं। श्रीराम, सीता और लक्ष्मण आपके हृदय में वसे रहते हैं।

सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा।
बिकट रूप धरि लंक जरावा।।९

आपने अपना वहुत छोटा रूप धारण करके सीताजी को दिखलाया और भयंकर रूप करके लंका को जलाया।

भीम रूप धरि असुर संहारे। रामचंद्र के काज संवारे ।।१०	आपने विकराल रूप धारण करके राक्षसों को मारा और श्रीरामचन्द्र के उद्देश्यों को सफल कराया।
लाय सजीवन लषन जियाये। श्री रघुवीर हरषि उर लाये ।।११	आपने संजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मणजी को जिलाया जिस पर श्रीरघुवीर ने हर्षित होकर आपको हृदय से लगा लिया।
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई। तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई।१२	श्रीरामचन्द्रजी ने आपकी वहुत प्रशंसा की और कहा कि तुम मुझे भरत जैसे प्यारे भाई हो।
सहस बदन तुम्हरो जस गावैं। अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं ।।१३	श्रीराम ने आपको यह कहकर हृदय से लगा लिया कि तुम्हारा यश हजार-मुख से सराहनीय है।
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा। नारद सारद सहित अहीसा ।।१४ जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते।१५	श्रीसनक,श्रीसनातन, श्रीसनन्दन, श्रीसनत्कुमार आदि मुनि, ब्रह्मा आदि देवता, नारदजी, सरस्वती जी, शेषनागजी, यमराज, कुबेर और सब दिशाओं के रक्षक, कवि, विद्वान, पंडित या कोई भी आपके यश का पूर्णतः वर्णन नहीं कर सकते।
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा। राम मिलाय राज पद दीन्हा ।।१६	आपने सुग्रीवजी को श्रीराम से मिलाकर उपकार किया, जिसके कारण वे राजा वने।
तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना ।।१७	आपके उपदेश का विभीषणजी ने पालन किया, जिससे वे लंका के राजा वने, इसको सव संसार जानता है।

जुग[1] सहस्र जोजन पर भानू।
लील्यो ताहि मधुर फल जानू ॥१८

जो सूर्य इतने योजन दूरी पर है कि उस पर पहुँचने के लिए हजार युग लगें। दो हजार योजन की दूरी पर स्थित सूर्य को आपने एक मीठा फल समझकर निगल लिया।

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं।
जलधि लाँधि गये अचरज नाहीं।१६

आपने श्रीरामचन्द्रजी की अँगूठी मुँह में रखकर समुद्र को लाँघ लिया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

दुर्गम काज जगत के जेते।
सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते ॥२०

संसार में जितने भी कठिन-से-कठिन काम हों, वो आपकी कृपा से सहज हो जाते हैं।

राम दुआरे तुम रखवारे।
होत न आज्ञा बिनु पैसारे ॥२१

श्रीरामचन्द्र के द्वार के आप रखवाले हैं, जिसमें आपकी आज्ञा विना किसी को प्रवेश नहीं मिलता। (अर्थात् श्रीराम-कृपा पाने के लिए आपकी प्रसन्नता आवश्यक है)।

सब सुख लहै तुम्हारी सरना।
तुम रच्छक काहू को डर ना ॥२२

जो भी आपकी शरण में आते हैं उन सभी को आनन्द प्राप्त होता है और जव आप रक्षक हैं, तो फिर किसी का डर नहीं रहता।

आपन तेज सम्हारो आपै।
तीनों लोक हाँक तें काँपै ॥२३

आपके सिवाय आपके वेग को कोई नहीं रोक सकता। आपकी गर्जना से तीनों लोक काँप जाते हैं।

---

१. जुग=युग; दो

भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै ॥२४	जहाँ 'महावीर' हनुमान जी का नाम सुनाया जाता है वहाँ भूत-पिशाच पास भी नहीं फटक सकते।
नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा ॥२५	वीर हनुमानजी ! आपका निरन्तर जप करने से सब रोग चले जाते हैं और सब पीड़ा मिट जाती है।
संकट तें हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै ॥२६	हे हनुमानजी ! विचार करने में, कर्म करने में और बोलने में, जिनका ध्यान आपमें रहता है, उनको सब संकटों से आप छुड़ा देते हैं।
सब पर राम तपस्वी राजा। तिन के काज सकल तुम साजा ॥२७	तपस्वी राजा श्रीरामचन्द्रजी सबसे श्रेष्ठ हैं, उनके सब कार्यों को आपने सहज कर दिया।
और मनोरथ जो कोइ लावै। सोइ अमित जीवन फल पावै ॥२८	जिस पर आपकी कृपा हो, वह कोई भी अभिलाषा करे तो उसे ऐसा फल मिलता है, जिसको जीवन में कोई सीमा नहीं होती।
चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा ॥२९	चारों युगों (सतयुग, द्वापर, त्रेता तथा कलियुग) में आपका यश फैला हुआ है, जगत् में आपकी कीर्ति सर्वत्र प्रकाशमान है।
साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे ॥३०	हे श्रीराम के दुलारे ! आप सज्जनों की रक्षा करते हैं और दुष्टों का नाश करते हैं।

अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता।
अस बर दीन जानकी माता ॥३१

आपको माता श्रीजानकी ने ऐसा वरदान दिया हुआ है, जिससे आप किसी को भी आठों सिद्धियाँ[1] और नौ निधियाँ[2] (सब प्रकार की सम्पत्ति) दे सकते हैं।

राम रसायन तुम्हरे पासा।
सदा रहो रघुपति के दासा ॥३२

आप निरन्तर श्रीरघुनाथजी की शरण में रहते हैं, जिससे आपके पास बुढ़ापा और असाध्य रोगों केनाश के लिए 'राम-नाम' औषधि है।

तुम्हरे भजन राम को पावैं।
जनम जनम के दुख बिसरावैं ॥३३
अंत काल रघुबर पुर जाई।
जहाँ जन्म हरि-भक्त कहाई ॥३४

आपका भजन करने से श्रीराम प्राप्त होते हैं और जन्म-जन्मांतर के दुःख दूर होते हैं और अन्त समय श्रीरघुनाथजी के धाम को जाते हैं और यदि फिर भी जन्म लेंगे तो भक्ति करेंगे और श्रीराम भक्त कहलायेंगे।

और देवता चित्त न धरई।
हनुमत सेइ सर्ब सुख करई ॥३५

हे हनुमानजी ! आपकी सेवा करने से सब प्रकार के सुख मिलते हैं, फिर अन्य किसी देवता की आवश्यकता नहीं रहती।

---

१. (१) **अणिमा**—जिससे साधक किसी को दिखायी नहीं पड़ता और कठिन-से-कठिन पदार्थ में प्रवेश कर जाता है।
(२) **महिमा**—जिससे योगी अपने को बहुत बड़ा बना लेता है।
(३) **गरिमा**—जिससे साधक अपने को चाहे जितना भारी बना लेता है।
(४) **लघिमा**—जिससे जितना चाहे उतना हलका बन जाता है।
(५) **प्राप्ति**—जिससे इच्छित पदार्थ की प्राप्ति होती है।
(६) **प्राकाम्य**—जिससे इच्छा करने पर वह पृथ्वी में समा सकता है, आकाश में उड़ सकता है।
(७) **ईशित्व**—जिससे सब पर शासन का सामर्थ्य हो जाता है।
(८) **वशित्व**—जिससे दूसरों को वश में किया जाता है।

२. पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, बर्च्च।

संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा ।।३६	हे वीर हनुमानजी ! जो आपका सुमिरन करता रहता है, उसके सब संकट कट जाते हैं और सब पीड़ा मिट जाती है।
जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं ।।३७	हे स्वामी हनुमानजी ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आप मुझ पर कृपालु श्रीगुरुजी के समान कृपा कीजिये।
जो सत बार पाठ कर कोई। छूटहि बंदि महा सुख होई ।।३८	जो कोई इस हनुमानचालीसा का सौ बार पाठ करेगा वह सब वन्धनों से छूट जायेगा और उसे परमानन्द मिलेगा।
जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा ।।३९	भगवान शंकर ने यह हनुमान चालीसा लिखवाया इसलिए वे साक्षी हैं कि जो इसे पढ़ेगा उसे निश्चय ही सफलता प्राप्त होगी।
तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय महं डेरा ।।४०	हे नाथ हनुमानजी ! तुलसीदास सदा ही श्रीराम का दास है। इसलिए आप उसके हृदय में निवास कीजिये।

दोहा

पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप। राम लषन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप।।	हे संकटमोचन पवनकुमार ! आप आनन्दमंगलों के स्वरूप हैं। हे देवराज ! आप श्रीराम, सीताजी और लक्ष्मण सहित मेरे हृदय में निवास कीजिये।

संकटमोचन हनुमानाष्टक

बाल समय रबि भक्षि लियो तब
तीनहुँ लोक भयो अंधियारो।
ताहि सों त्रास भयो जग को
यह संकट काहु सों जात न टारो ।।
देवन आनि करी बिनती तब
छांड़ि दियो रबि कष्ट निवारो।
को नहिं जानत है जग में कपि
संकटमोचन नाम तिहारो ।।१।।

हे हनुमानजी ! जब आप बालक थे तब आपने सूर्य को अपने मुँह में रख लिया जिससे तीनों लोकों[1] में अँधेरा हो गया। इससे संसार-भर में विपत्ति छा गयी और उस संकट को कोई भी दूर नहीं कर सका। देवताओं ने आकर आपकी विनती की और आपने सूर्य को मुक्त कर दिया। इस प्रकार संकट दूर हुआ। हे हनुमानजी ! संसार में ऐसा कौन है जो आपका 'संकटमोचन' नाम नहीं जानता।

बालि की त्रास कपीस बसै गिरि
जात महाप्रभु पंथ निहारो।
चौंकि महा मुनि साप दियो तब
चाहिय कौन बिचार बिचारो ।।
कै द्विज रूप लिवाय महाप्रभु
सो तुम दास के सोक निवारो ।।को०-२।।

---

१. स्वर्ग-लोक, भू-लोक, पाताल-लोक।

बालि के डर से सुग्रीव पर्वत पर रहते थे। उन्होंने श्रीरामचन्द्र को आते देखा। उन्होंने आपको पता लगाने के लिए भेजा। आपने अपना ब्राह्मण का रूप करके श्रीरामचन्द्र से भेंट की और उनको अपने साथ लिवा लाये जिससे आपने सुग्रीव के शोक का निवारण किया। हे हनुमानजी ! संसार में ऐसा कौन है जो आपका 'सँकटमोचन' नाम नहीं जानता।

अंगद के संग लेन गये सिय
खोज कपीस यह बैन उचारो।
जीवत ना बचिहौ हम सों जु
बिना सुधि लाए इहाँ पगु धारो॥
हेरि थके तट सिंधु सबै तब
लाय सिया-सुधि प्रान उबारो॥को०-३॥

सुग्रीव ने अंगद के साथ सीताजी की खोज के लिए अपनी सेना को भेजते समय यह कह दिया था कि यदि सीताजी का पता लगाकर नहीं लाये तो हम सबको मार डालेंगे। सब ढूँढ-ढूँढकर हार गये। तब आप समुद्र के तट से कूदकर सीताजी का पता लगाकर लाये जिससे सबके प्राण बचे। हे हनुमानजी ! संसार में ऐसा कौन है जो आपका 'संकटमोचन' नाम नहीं जानता।

रावन त्रास दई सिय को सब
राक्षसि सों कहि सोक निवारो।
ताहि समय हनुमान महाप्रभु
जाय महा रजनीचर मारो॥
चाहत सीय असोक सों आगि सु
दै प्रभु मुद्रिका सोक निवारो॥को०-४॥

जब रावण ने श्रीसीताजी को भय दिखाया और कष्ट दिया और सब राक्षसियों से कहा कि सीताजी को मनावें, हे महावीर हनुमानजी ! उस समय आपने पहुँचकर महान राक्षसों को मारा। सीताजी ने अशोक वृक्ष से अग्नि माँगी (स्वयं को भस्म करने के

लिए) परन्तु आपने उसी वृक्ष पर से श्रीरामचन्द्र की अँगूठी डाल दी जिससे सीताजी की चिन्ता दूर हुई। हे हनुमानजी ! संसार में ऐसा कौन है जो आपका 'संकटमोचन' नाम नहीं जानता।

बान लग्यो उर लछिमन के तब
प्रान तजे सुत रावन मारो।
लै गृह बैद्य सुषेन समेत
तबै गिरि द्रोन सु बीर उपारो।।
आनि सजीवन हाथ दई तब
लछिमन के तुम प्रान उबारो।।को०-५।।

रावन के पुत्र मेघनाद ने वाण मारा जो लक्ष्मणजी की छाती पर लगा और उससे उनके प्राण संकट में पड़ गये। तव आप ही सुषेण वैद्य को उसके घर सहित उठा लाए और द्रोणाचल पर्वत सहित संजीवनी बूटी ले आये जिससे लक्ष्मणजी के प्राण वच गये। हे हनुमानजी ! संसार में ऐसा कौन है जो आपका 'संकटमोचन' नाम नहीं जानता।

रावन जुद्ध अजान कियो तब
नाग कि फाँस सबै सिर डारो।
श्रीरघुनाथ समेत सबै दल
मोह भयो यह संकट भारो।।
आनि खगेस तबै हनुमान जु
बंधन काटि सुत्रास निवारो।।को०-६।।

रावण ने घोर युद्ध करते हुए सबको नागपाश में बाँध लिया तव श्री रघुनाथजी सहित सारे दल में यह मोह छा गया कि यह तो वहुत भारी संकट है। उस समय, हे हनुमानजी ! आपने गरुड़जी को लाकर बंधन को कटवा दिया जिससे संकट दूर हुआ। हे हनुमानजी ! संसार में ऐसा कौन है जो आपका संकटमोचन नाम नहीं जानता।

बंधु समेत जबै अहिरावन
लै रघुनाथ पताल सिधारो।

देबिहिं पूजि भली बिधि सों बलि
देउ सबै मिलि मंत्र बिचारो ।।
जाय सहाय भयो तब ही
अहिरावन सैन्य समेत संहारो ।।को०-७।।

जब अहिरावण श्री रघुनाथजी को लक्ष्मण सहित पाताल को ले गया और भलीभाँति देवीजी की पूजा करके सबके परामर्श से यह निश्चय किया कि इन दोनों भाइयों की बलि दूँगा, उसी समय आपने वहाँ पहुँचकर अहिरावण को उसकी सेना समेत मार डाला। हे हनुमानजी ! संसार में ऐसा कौन है जो आपका 'संकटमोचन' नाम नहीं जानता।

काज किये बड़ देवन के तुम
बीर महाप्रभु देखि बिचारो।
कौन सो संकट मोर गरीब को
जो तुमसों नहिं जात है टारो ।।
बेगि हरो हनुमान महाप्रभु
जो कछु संकट होय हमारो ।।को०-८।।

हे महावीर ! आपने बड़े-बड़े देवों के कार्य सँवारे हैं। अब आप देखिये और सोचिये कि मुझ दीन-हीन का ऐसा कौन-सा संकट है जिसको आप दूर नहीं कर सकते। हे महावीर हनुमानजी ! हमारा जो कुछ भी संकट हो आप उसे शीघ्र ही दूर कर दीजिये। हे हनुमानजी ! संसार में ऐसा कौन है जो आपका 'संकटमोचन' नाम नहीं जानता।

दो०—लाल देह लाली लसे, अरु धरि लाल लंगूर।
बज्र देह दानव दलन, जय जय जय कपि सूर ।।

आपका शरीर लाल है और आपकी पूँछ लाल है और आपने लाल सिंदूर धारण कर रखा है और आपके वस्त्र भी लाल हैं। आपका शरीर वज्र है और आप दुष्टों का नाश कर देते हैं। हे हनुमानजी ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

श्री हनुमानाष्टकम्

परम वन्दनीय अनन्त वलवन्त श्री हनुमन्तलालजी की; श्रीराम-चरितमानस पंचम सोपान सुन्दरकांड के मंगलाचरण के तीसरे श्लोक में आठ विशेषणों से वन्दना की गई है। यदि अल्प समय में अनेक हनुमानाष्टक पाठ करने हों तो प्रत्येक विशेषण के अन्त में 'नमामि' जोड़ देने से पाठ हनुमानाष्टक हो जायेगा।

अथ हनुमानाष्टकम्

अतुलित बलधामं नमामि। स्वर्णशैलाभदेहं नमामि।।
दनुज - बन - कृशानुं नमामि। ज्ञानिनामग्रगण्यं नमामि।।
सकल गुणनिधानं नमामि। वानराणामधीशं नमामि।।
रघुपति - प्रिय-भक्तं नमामि। वातजातं नमामि।।

इति हनुमानाष्टकम्

फलश्रुति—

इस रीति से ८ या २८ या १०८ पाठ नित्य करने से पाठक/साधक सहज ही हनुमानजी का कृपा पात्र बनकर हर, गौरी, राम, लक्ष्मण एवं जगज्जननी सीताजी का प्रिय वन जाता है। जीव का ब्रह्म से एवं ब्रह्म का जीव से संबंधानुराग जोड़ने वाले केसरीकिशोर सदैव ऐसे पाठक का सार-संभार नित्य करते हैं।

श्रीहनुमानजी की आरती

आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्टदलन रघुनाथ कला की ॥टेक॥
जाके वल से गिरिवर काँपै। रोग-दोष जाके निकट न झाँपै ॥१॥
अंजनि पुत्र महा वलदाई। संतन के प्रभु सदा सहाई ॥२॥
दे वीरा रघुनाथ पठाये। लंका जारि सीय सुधि लाये ॥३॥
लंका सो कोट समुद्र-सी खाई। जात पवनसुत वार न लाई ॥४॥
लंका जारि असुर संहारे। सियारामजी के काज संवारे ॥५॥
लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े सकारे। आनि सजीवन प्रान उवारे ॥६॥
पैठि पताल तोरि जम-कारे। अहिरावन की भुजा उखारे ॥७॥
वायें भुजा असुर दल मारे। दहिने भुजा संतजन तारे ॥८॥
सुर नर मुनि आरती उतारे। जै जै जै हनुमान उचारे ॥९॥
कंचन थार कपूर लौ छाई। आरति करत अंजना माई ॥१०॥
जो हनुमान जी की आरती गावै। वसि बैकुंठ परमपद पावै ॥११॥

कीर्तन

जय सियाराम जय जय हनुमान। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
सर्वरहित सब उरपुरवासी। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
ईस्वर अंस जीव अविनासी। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
चेतन अमल सहज सुखरासी। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
सो मायावस भयउ गुसाईं। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
बंध्यो कीर मर्कट की नाईं। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
मैं अरु मोर, तोर तैं माया। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
जे वस कीन्हो जीव निकाया। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
कवहुंक करि करुना नर देही। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
देत ईस विन हेतु सनेही। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
वड़े भाग मानुष तन पावा। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
सुर दुर्लभ सव ग्रन्थन्ह गावा। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
विनुश्रम प्रवल मोह दलुजीती। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
फिरत सनेहँ मगन सुख अपने। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
नामप्रसाद सोच नहिं सपने। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
प्रविसि नगर कीजे सब काजा। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
हृदय राखि कोसलपुर राजा। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
विनु संतोष न काम नसाहीं। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
काम अछत सुख सपनेहु नाहीं। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
राम भजन विनु मिटहिं कि कामा। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
थल विहीन तरु कवहु कि जामा। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
सीयराम मय सव जगजानी। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।
करउँ प्रनाम जोरि जुगपानी। जय सियाराम जय जय हनुमान ।।

जय सियाराम जय जय हनुमान। जय सियाराम जय जय गुरुदेव ।।

श्रीराम जय राम जय जय राम। श्रीराम जय राम जय जय राम ॥
श्रीराम जय राम जय जय राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥

ध्यान—

आराध्य श्रीराम त्रिकुटी में। प्रियतम सीताराम हृदय में ॥
श्रीराम जय राम जय जय राम। राम राम राम राम **रोम रोम में ॥**

दर्शन—

श्रीराम जय राम जय जय राम। राम राम राम राम **जन जन में ॥**
श्रीराम जय राम जय जय राम। राम राम राम राम **कण कण में ॥**

जप—

श्रीराम जय राम जय जय राम। राम राम राम राम **राम मुख में ॥**
श्रीराम जय राम जय जय राम। राम राम राम राम **राम मन में ॥**
श्रीराम जय राम जय जय राम। राम राम राम राम **स्वाँस स्वाँस में ॥**
श्रीराम जय राम जय जय राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥

राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥
राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥
राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥
राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥
राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥
राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥
राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥
राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥
राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥
राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम ॥

"श्रीहनुमान चरित श्रेष्ठतम मानव-मूल्यों की परिभाषा है।....

"श्रीहनुमान चरित उन साधना-तत्वों का कोष हैं जिनको व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ करने से सुख की उपलब्धि, शान्ति की सुरक्षा और आनन्द रस की अनुभूति होती है। जिसकी जैसी महत्वा-कांक्षाएँ हों इस कोष में से मणियाँ बटोर ले। साधना के लिए दृढ़ निश्चय चाहिए।...

"युवापीढ़ी इस पुस्तक के दूसरे भाग को एक सच्चे मित्र, परमहितैषी एवं अनुभवी पथ-प्रदर्शक के रूप में पाएगी।"

—संपादक

"आज हमारे देश में युवक-युवतियाँ देश-सेवा, जनहित एवं व्यक्तिगत-उत्थान के लिए जागरूक हैं, जिसके लिए श्रीहनुमान चरित आदर्श है। इस पुस्तक के माध्यम से उस उद्देश्य की पूर्ति हो, यह मेरी मंगल-कामना है।

—मंडेलियाजी

श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये

प्रकाशक:
मण्डेलिया परमार्थ कोष